■ वर्ष 47, अंक 5, अक्टूबर 2025 ■ मूल्य 20 रुपये

सामयिक वार्ता

ट्रम्प का टैरिफ और भारत की रणनीतिक कमजोरी

फन्ने ख़ाँ कुछ और कविताएँ / राजेन्द्र राजन

(सामयिक वार्ता के अप्रैल 2024 के अंक में 'फ़न्ने खां' शीर्षक से राजेन्द्र राजन की पाँच कविताएँ छपी थीं जो काफ़ी पसन्द की गयीं। प्रस्तुत अंक में दी जा रही ये कविताएँ भी उसी श्रृंखला की हैं और इसी के साथ दस कविताओं की यह श्रृंखला पूरी होती है। सेतु प्रकाशन से प्रकाश्य कवि के नये संग्रह 'यह कौन सी जगह है' में भी ये कविताएँ संकलित हैं।)

फन्ने खां : छह

फन्ने खां को भेड़ों से बहुत लगाव था
भेड़ों को देखते ही
उसमें खुशी का ज्वार उठता
भेड़ों की तारीफ़ करते
वह कभी थकता नहीं था
भेड़ों की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए
एक बार उसने अपनी डायरी में लिखा
भेड़ें इस दुनिया को ऊपरवाले की
सबसे बड़ी नियामत हैं
भेड़ों को पालना कितना आसान है
और कितना आसान है उन्हें हाँकना
भेड़ें कभी दुलत्ती नहीं झाड़तीं
उनके सींग नहीं होती
न नुकीले बड़े दाँत और नाखून
वे कभी गुस्सा नहीं होतीं
वे दूसरे की देखा-देखी करती
हमेशा झुण्ड में चलती हैं
इंसान को भी भेड़ की तरह होना चाहिए

भेड़ों से फन्ने खां का लगाव
रह-रहकर उसे बेचैन कर देता
फिर वह निकल जाता भेड़ों की खोज में
चरागाह की ओर
भेड़ें चर रही होतीं तो वह टेकरी पर बैठा
ताक में रहता
जैसे ही भेड़ों की रेवड़ चलना शुरू करती
वह सबसे आगे चल रही
भेड़ के आगे हो जाता
और यह देखकर बहुत खुश होता
कि उसके पीछे
इतनी सारी भेड़ें चल रही हैं
इस तरकीब को दोहराते-दोहराते
फन्ने खां भेड़ों का अगुआ बन गया
और धीरे-धीरे भेड़ों को भी
फन्ने खां के पीछे चलने की आदत हो गयी
चलते-चलते फन्ने खां रुक जाता
तो भेड़ें भी रुक जातीं

फिर फन्ने खां पूरे हाव-भाव के साथ
उन्हें सम्बोधित करता
भेड़ों से अपने लगाव के क़िस्से सुनाता
फिर भेड़ों की गौरवशाली सभ्यता
व उनकी महान संस्कृति का बखान करता
यह सब सुनकर भेड़ें अपूर्व गर्व
और श्रेष्ठता-बोध से सराबोर हो जातीं

भेड़ों को जब तब सम्बोधित करने में
फन्ने खां को बहुत मज़ा आता
लेकिन हर बार एक ही बात सुनते-सुनते
भेड़ें ऊबने लगीं और उनकी ऊब
उनकी घटती तादाद से ज़ाहिर भी हो जाती

फिर फन्ने खां
जो भेड़ों की हर नब्ज़ पहचानता था
उसने भेड़ों की दुखती रग पर उँगली रख दी
कहा मुझे मालूम है तुम लोगों को
हमेशा जान का खतरा रहता है
हिंसक पशुओं और शिकारियों से
बचाव के लिए
तुम्हारे पास न तो सींग हैं न नाखून
मैं तुम्हें ऐसी जगह ले चलूँगा
जहाँ खूब चरागाह हो
बड़ा सा सब्ज़ बाग़ हो
और उसके चारों तरफ़
खूब चौड़ी खाई खुदवा दूँगा
ताकि हिंसक पशुओं के हमले का
खतरा न रहे

(शेष पृष्ठ 47 पर)

৷
सामयिक वार्ता

अक्टूबर 2025, वर्ष 47 अंक 5

संस्थापक संपादक : किशन पटनायक

संपादक : **अफलातून**

संपादन सहयोग
सच्चिदानंद सिन्हा,
चंचल मुखर्जी (संयोजक), लोलार्क द्विवेदी,
संजय गौतम, प्रियदर्शन, अरविंद मोहन,
हरिमोहन, राजेन्द्र राजन, अरुण कुमार त्रिपाठी,
महेश विक्रम सिंह, संजय भारती, गंगा प्रसाद, स्मिता

प्रबन्ध सहयोग : नीता चौबे
अक्षर संयोजन : गौरीशंकर सिंह

खाता नाम - सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा - सोनारपुरा, वाराणसी
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या **40170100005458**
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहाँ दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं
S के बाद O (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
इस खाते में पैसा जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना
ई-मेल अथवा मोबाइल-09695894830/ 08004085923

कार्यालय
डी. 28/160, पाण्डे हवेली, वाराणसी-221001
फोन : 08004085923 (संपादन),
09695894830 (प्रबंध)
e-mail- varta3@gmail.com

इस अंक में

आवरण 2 **राजेन्द्र राजन की कविताएँ**

2 सम्पादकीय **: मताधिकार तथा मतदाता के अधिकार**

5 **ट्रम्प का टैरिफ भारत की रणनीतिक कमजोरी**
अरुण कुमार

10 **गुलाम दिमाग की भारतमाता**
प्रेम सिंह

13 **शिक्षा का खेल**
महेश विक्रम

19 **समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ़ सरकारी फतवा**
महेश विक्रम

26 **सोशल मीडिया कितनी क्रांति कितनी अराजकता**
प्रियदर्शन

28 **श्रद्धांजलि : बिस्वरंजन परमगुरु**
ऐश्वर्या सरकार

31 **सच्चिदानन्द जी से एक पुराना साक्षात्कार**
विरेन्द्र कुमार झांकर

33 **बिजली सुधार...**
वीजू कृष्णान

35 **स्मार्ट-मीटर की मार्फत बिजली का निजीकरण**
सुनील कुमार

41 **सीजीमाली का संघर्ष**
सुनील कुमार

45 **समय को साधता जुबीन का संगीत**
डॉ. संजय सिंह

आखिरी पन्ना **कांग्रेस का स्थान और काम**
गांधीजी

सदस्यता शुल्क : एक प्रति : 20/-, वार्षिक शुल्क : 150/-, संस्थागत वार्षिक शुल्क : 200/-
पाँच वर्षीय शुल्क : 600/-, आजीवन शुल्क : 2000/-

<u>संपादकीय</u>

मताधिकार तथा मतदाता के अधिकार

(12 सितंबर 2025 को एसोशियेशन फोर डेमोक्रटिक रिफोर्म्स के सह-संस्थापक और प्रमुख कार्यकर्ता जगदीप एस. छोकर का निधन हुआ। वे 80 वर्ष के थे और चुनावी सुधारों, पारदर्शिता तथा स्वच्छ लोकतंत्र के लिए लंबे समय से संघर्षरत थे। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के माध्यम से उन्होंने उम्मीदवारों की संपत्ति, आपराधिक रिकॉर्ड आदि की जानकारी सार्वजनिक करने जैसे अभियान चलाए। 'सामयिक वार्ता' का यह संपादकीय उनकी स्मृति को समर्पित है।)

समता संगठन एक राजनीतिक संगठन था। इसकी स्थापना 1980 में हुई थी। संसदीय लोकतंत्र में यकीन के बावजूद इसका निर्णय था कि दस साल तक विधानसभा या लोकसभा का चुनाव नहीं लडेंगे। 1990 में बिहार के रोहतास जिले के दिनारा विधानसभा क्षेत्र से समता संगठन ने पूर्व विधायक साथी शिवपूजन सिंह को प्रयोग के तौर पर चुनाव लड़ाया था। डॉ स्वाति और मैं अलग-अलग गांवों में तैनात किए गए थे। मैं करंज गांव में था। उस गांव में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में मेरे मित्र के चाचा सरपंच थे। मतदान के दिन सरपंच के 10-11 साल के बेटे ने मतदान शुरु होने के पहले राइफल से हवाई फायर किया और मतदान केंद्र पर उस परिवार का कब्जा हो गया। वे मुझे 20-25 सादे मतपत्र शिवपूजनजी के 'बाल्टी छाप निशान' पर मुहर लगाने के लिए देना चाह रहे थे, बतौर मेहमाननवाजी।

डॉ स्वाति ने गांव की महिलाओं से पूछा कि आप लोग वोट देने जाएंगी,न? महिलाओं ने बताया कि उनका वोट देने परिवार के 'गार्जियन' जाएंगे,वे नहीं। दिनारा में 'मतदान' के यह दोनों प्रसंग चोरी के नहीं लूट या डकैती के कहे जा सकते हैं। बहरहाल ऐसी धांधली अथवा मतपेटियों में पानी डाल देना अब नहीं होता है। इस दौर में मतदान की धांधली के लिए भारत के निर्वाचन के शीर्ष से आये निर्देश तथा धांधली के लिए समर्पित राजनैतिक कार्यकर्ताओं की फौज का होना आवश्यक है। निर्वाचन आयोग की जिम्मेदारी मुक्त और निष्पक्ष चुनाव कराना होता है। दिनारा में मतदान का जो अनुभव 1990 का है,वह उसकी पुनरावृत्ति अब नहीं होती है। हांलाकि मतदान का विडियो न देने के लिए वर्तमान मुख्य चुनाव आयुक्त ने जो तर्क दिया वह उतना ही पुरुषप्रधान और सामंती सोच का है जितना 1990 में दिनारा के पुरुषों का अपने परिवारों की महिलाओं के मतदान केंद्र न जाने देने के लिए था। चुनाव प्रक्रिया के दौरान भारत के निर्वाचन आयोग से निष्पक्ष हस्तक्षेप की उम्मीद की जाती है।

वाराणसी में लोकसभा का मतदान एक बार कर्फ्यू के दौरान हुआ था। शिवाला के तहसील (पूर्व बनारस-राज की तहसील) में दो मुस्लिम युवकों की मतदान केंद्र पर हत्या कर दी गई थी। भारतीय जनता पार्टी के बारह कार्यकर्ताओं पर हत्या का मुकदमा चला, आरोप पत्र दाखिल हुआ। अगले आम चुनाव के ठीक पहले भाजपा की कल्याण सिंह सरकार ने चुनावी हिंसा का यह मुकदमा वापस लेने का निर्णय लिया। समाजवादी जन परिषद ने वाराणसी के दौरे पर पर आए मुख्य चुनाव आयुक्त श्री जे. मा. लिंगदोह को कल्याण सरकार की इस अलोकतांत्रिक कार्रवाई की बाबत मिलकर ज्ञापन दिया। मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने अगले ही दिन उत्तर प्रदेश सरकार को निर्देश दिया कि चुनावी हिंसा का मुकदमा वे वापस नहीं ले सकते। श्री नरेंद्र मोदी ने इन्हीं मुख्य निर्वाचन आयुक्त पर इसाई होने के कारण निष्पक्ष न होने का आरोप लगाया था।

गुलाम भारत में मताधिकार सीमित था। विधान सभा में शिक्षा,संपत्ति,लगान या आय कर देने वाले ही वोट दे सकते थे। भारत की संविधान सभा का चुनाव विधान सभा के सदस्यों द्वारा किया गया था तथा रजवाड़ों को सदस्य

नामित करने का अधिकार था। सोशलिस्ट पार्टी तथा कम्युनिस्ट पार्टियों ने इन्हीं वजहों से संविधान सभा का बहिष्कार किया था। सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव जयप्रकाश नारायण अपने दल की तरफ से सरकार को सुझाव दिए जिनमें आर्थिक गैरबराबरी,अशिक्षा,बेरोजगारी को दूर करने के प्रावधान थे। इनमें से ज्यादातर सुझावों को संविधान के राज्य के नीति निर्देशक तत्वों वाले हिस्से में शामिल किया गया,मौलिक अधिकार के रूप में नहीं।

भारत का संविधान लागू होते ही मतदान की उम्र हासिल पूरी आबादी को मताधिकार मिला। अमेरिका में अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिकों को मताधिकार से नाना प्रकार की शर्तें लगा कर वंचित किया जाता था। 1965 के पहले अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिकों को मताधिकार के प्रयोग से पहले साक्षरता-परीक्षा,मतदान टैक्स जैसी उलजलूल शर्तें लगा कर वंचित कर दिया जाता था। साक्षरता परीक्षा में पूरा अमेरिकी संविधान पढने के लिए कहा जा सकता था। नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध व्यापक नागरिक आधिकारों के लिए चले आंदोलन के फलस्वरूप 1965 में इन बाधाओं को पूरी तरह हटा कर वास्तविक रूप से पूर्ण मताधिकार दिया गया। गौरतलब है कि राष्ट्रपति का पहला चुनाव 1788 से शुरु हुआ था।

इंग्लैंड में 1918 में महिलाओं को सीमित मताधिकार मिला। इसके तहत सिर्फ 30 वर्ष से अधिक उम्र की महिलाओं को जो संपत्ति की मालिक थी या जिनके पति संपत्ति के मालिक थे को मताधिकार मिला। 1928 में जाकर 21 वर्ष से अधिक उम्र की महिलाओं को पुरुषों के समान बिना किसी शर्त मताधिकार मिला। इंग्लैंड का संसदीय चुनाव 1722 से शुरू हुआ था।

मताधिकार से संबंधित वर्तमान घटनाक्रम पर गौर करें। भारत का निर्वाचन आयोग राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारियों को निर्देश देते हैं। निर्देश का अनुपालन राज्य सरकार के अधिकारी,कर्मचारियों के शिक्षक,आंगनवाडी कर्तियों,राजस्व विभाग के कर्मचारियों की फौज द्वारा कराया जाता है। नेता विरोधी दल ने भारत निर्वाचन आयोग के भरसक असहयोग के बावजूद शिकायत के लिए ऐसे क्षेत्रों को चुना है जिस राज्य में कांग्रेस का शासन है। कर्नाटक के मुख्य चुनाव अधिकारी,बूथ स्तरीय अधिकारी,पुलिस और सी. आई. डी. पर कांग्रेस की राज्य सरकार के प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता है। निचले स्तर के सरकारी कर्मचारी आम तौर पर निष्पक्ष होंगे इसकी संभावना अधिक होती है। अधिकतर राजनैतिक दलों के कार्यकर्ता सिर्फ मतदान के और वोटों की गिनती के समय अभिकर्ता (एजेंट) बनते है। मतदाता सूची के पुनरीक्षण के कार्यक्रम में अधिकतर दलों के कार्यकर्ता शरीक नहीं होते हैं। भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ता मतदाता सूची के पुनरीक्षण कार्यक्रम में भरपूर रुचि लेते हैं और भागीदारी करते हैं। इस प्रकार मतदाता सूची से जायज नामों को हटाने तथा बनावटी नामों को जुडवाने में भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता पूरे प्रशिक्षण और मुस्तैदी के साथ शामिल रहते हैं। केंद्र सरकार और भाजपा शासित राज्य सरकारों से इन्हें मदद मिलती है।

इससे जुडा बुनियादी सवाल यह है कि क्या आम जनता को सत्ता या हुकूमत संसद या विधायिकाओं के जरिए मिलती है? गांधीजी इस मान्यता को गंभीर भूल मानते थे। वे कहते थे, 'सच बात यह है कि हुकूमत या सत्ता जनता के बीच रहती है, जनता की होती है और जनता समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों की हैसियत से जिन को पसंद करती है, उनको उतने समय के लिए सौंप देती है। यही क्यों, जनता से भिन्न या स्वतंत्र पार्लमेण्टों की सत्ता तो ठीक, हस्ती तक नहीं होती । पिछले इक्कीस वर्षो से भी ज्यादा (लेख 1945 का है) अरसे से मैं यह इतनी सीधी-सादी बात लोगों के गले उतारने की कोशिश करता रहा हूँ। सत्ता का असली भण्डार या खजाना तो सत्याग्रह की या सविनय कानून-भंग की शक्ति में है। एक समूचा राष्ट्र अपनी विधायिका के कानूनों के अनुसार चलने से इनकार कर दे, और इस सिविल नाफरमानी के नतीजों को बर्दास्त करने के लिए तैयार हो जाए तो सोचिए कि क्या होगा !

ऐसी जनता सरकार की विधायिका को और उसके शासन-प्रबंध को जहाँ का तहाँ, पूरी तरह, रोक देगी । सरकारकी, पुलिस की या फौज की ताकत, फिर वह कितनी ही जबरदस्त क्यों न हो, थोडे लोगों को ही दबाने में

कारगर होती है। लेकिन जब कोई समूचा राष्ट्र सब कुछ सहने को तैयार हो जाता है, तो उसके दृढ़ संकल्प को डिगाने में किसी पुलिस की या फौज की कोई जबरदस्ती काम नहीं देती ।'

भारत में लोकतांत्रिक प्रक्रिया के एक जरूरी आयाम पर सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ का ऐतिहासिक निर्णय देश के प्रमुख दलों द्वारा चर्चा का विषय नहीं बनाया जा रहा है। जनवरी 2018 से चुनावी बॉन्ड की योजना शुरु हुई तथा फरवरी 2024 तक चली। इस दरमियान भारतीय जनता पार्टी ने 8,251.8 करोड रुपये प्राप्त किए तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1334.35 करोड रुपये प्राप्त किये। चुनावी बोंड्स की कोई सीमा निर्धारित नहीं थी तथा और न ही स्रोत उद्घाटित करना था। इस योजना को पूरी तरह से असंवैधानिक करार दिए जाने के बावजूद योजना द्वारा हासिल धन राशि को जब्त करने अथवा वसूलने की कोई चर्चा नहीं है। कुछ राज्यों में विपक्षी दल सत्ता में थे उन्हें भी इन बॉन्ड्स से चंदा मिला। भारत निर्वाचन आयोग तथा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा इसके विवरण को सार्वजनिक करने में हीलाहवाली भी प्रकट की गई थी। संविधान पीठ ने मतदाताओं के सूचना प्राप्त करने के अधिकार को मौलिक अधिकार माना।

वाम मोर्चा के दलों ने चुनावी बॉण्ड्स योजना का घोषित रूप से न सिर्फ विरोध किया अपितु माकपा के तत्कालीन महासचिव सीताराम येचुरी ने इसे सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर चुनौती भी दी।

राजनीति पर पूंजी की जकड़न के मामले में कांग्रेस और भाजपा समान रुख रखते हैं। 28 मार्च 2014 को, एसोसिएशन फोर डेमोक्रेटिक रिफोर्म्स बनाम भारत संघ के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने देश के इन प्रमुख दोनों दलो को विदेशी स्रोतों से चंदा लेने के मामले में 'विदेशी योगदान विनियमन अधिनियम 2010 (FCRA ,2010) के उल्लंघन का दोषी पाया। इन दोनो दलों ने संसद में बिना खास बहस किए कानून में संशोधन ही नहीं किया उसे पूर्व -प्रभाव से लागू कर दिया और इस प्रकार दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय निष्प्रभावी हो गया।

अनूप बरनवाल बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 2 मार्च 2023 को अपना फैसला सुनाया। इस निर्णय में अदालत ने मुख्य चुनाव आयुक्त (सीईसी) और अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति प्रक्रिया को असंवैधानिक घोषित किया, क्योंकि वर्तमान व्यवस्था (अनुच्छेद 324(5) के तहत) कार्यपालिका को अत्यधिक शक्ति प्रदान करती है, जो चुनाव आयोग की स्वतंत्रता को कमजोर करती है। अदालत ने कहा कि यह प्रक्रिया समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14) और स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करती है। अदालत ने अंतरिम व्यवस्था के रूप में निर्देश दिया कि संसद द्वारा कानून बनाने तक, राष्ट्रपति को सलाह देने वाली समिति में प्रधानमंत्री, विपक्ष के नेता और मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई) शामिल होंगे। इस समिति की सिफारिश पर ही सीईसी और चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति होगी, ताकि चुनाव आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित हो।

इस फैसले के बाद संसद ने दिसंबर 2023 में 'मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य चुनाव आयुक्तों (नियुक्ति, सेवा की शर्तें एवं कार्यकाल) अधिनियम, 2023' पारित किया, जिसमें समिति से भारत के मुख्य न्यायाधीश को हटाकर प्रधानमंत्री द्वारा नामित एक केंद्रीय मंत्री को शामिल किया गया। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) सहित कई याचिकाकर्ताओं ने इस कानून को चुनौती दी, दावा किया कि यह अनूप बरनवाल फैसले का उल्लंघन करता है और चुनाव आयोग की स्वतंत्रता को खतरे में डालता है।

भारत में लोकतंत्र के मौजूदा संकट से मुक्कमल तौर पर टकराने के लिए पूंजीवाद विरोधी नई राजनीति की जरूरत है।

अफ़लातून

30 सितंबर,2025

ट्रम्प के टैरिफ ने भारत की रणनीतिक कमजोरी उजागर कर दी है

अरुण कुमार
अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

चीन और भारत से संयुक्त राज्य की बातचीत के मामले में जमीन आसमान का अन्तर है। भारत पर रूस से व्यापार करने पर 25 प्रतिशत् का शुल्कदण्ड (पीनल ड्यूटी) थोप दिया गया है। यह 25 प्रतिशत के संभावित टैरिफ के अतिरिक्त होगा। लेकिन चीन के लिए इस विषय पर बातचीत के लिए अगले 90 दिनों की मियाद दे दी गयी है। जबकि विडम्बना यह है कि भारत के मुकाबले चीन रूस से कहीं अधिक ऊर्जा का आयात करता है, और जबकि संयुक्त राज्य चीन को वैश्विक क्षितिज पर ऊपर आने से रोकना चाहता है और भारत को इसमें अपना रणनीतिक साझेदार बनाए रखना चाहता है। और तो और चीन ने ट्रम्प की टैरिफ की आलोचना करने से भी कोई परहेज नहीं रखा है जबकि भारत सापेक्षिक रूप से शान्त और समन्वयी बना रहा है।

भारत को दण्ड

एक दिन भी ऐसा नहीं गुजरा है जब अमेरिका के किन्हीं शीर्ष कार्यवाहकों/अधिकारियों ने भारत की निंदा न की हो। अमेरिका के राष्ट्रपति, अमेरिका के उप राष्ट्रपति जे.डी. वान्स, ट्रेजरी सेक्रेटरी स्कॉट बेसेंट एवं राष्ट्रपति ट्रम्प के सलाहकार पीटर नवारो लगभग हर दिन नियमित तौर से भारत की आलोचना करते रहे हैं। राष्ट्रपति ट्रम्प की भारत के प्रति नाराजगी का हालिया संकेत उनके द्वारा क्वाड सम्मेलन में भाग लेने भारत आने से इनकार करने में मिला है। मोदी और ट्रम्प के बीच रिश्ते ठीक करने के लिहाज से भारत बहुत कुछ इस पर निर्भर कर रहा था। इसके अलावा अमेरिका अपने संधिगत योरोपीय देशों से भी टैरिफ बढ़ाकर रूस से कच्चा तेल खरीदने के कारण भारत को दण्डित करने के लिए कह रहा है। जबकि विडम्बना यह है कि अमेरिका और योरोपीय संघ दोनों का ही रूस से व्यापार जारी है।

व्यापार के मामले में नवारो और बेसेंट दोनों ही बार बार यह कहते रहे हैं कि भारत उनका रणनीतिक सहभागी रहना चाहता है किन्तु वह उस प्रकार का व्यवहार नहीं करता है। उनका आशय है कि अमेरिका का रणनीतिक पार्टनर रहते हुए भी भारत को उसके अपेक्षाकृत स्वतंत्र व्यवहार के प्रदर्शन के कारण ही दण्ड दिया गया है। जहाँ इसे एक कारण माना जा सकता है वहीं यह भी संदेह बनता है कि इसमें ट्रम्प और मोदी के बीच का व्यक्तिगत व्यवहार कहीं अधिक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है।

50 प्रतिशत् टैरिफ के कारण अमेरिका को होने वाला भारत का 50 प्रतिशत् निर्यात प्रभावित होना तय है। भारत शायद इस मुगालते में रहा है कि अमेरिका के साथ स्ट्रैटेजिक सहकार एवं ट्रम्प और मोदी के बीच व्यक्तिगत् मित्रता के चलते उसके साथ पसंदीदा व्यवहार किया जाएगा। भारत के अधिकारी यह कहते रहे थे कि भारत पर अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मुकाबले कम टैरिफ लगेगा और इससे भारत उनसे बेहतर स्थिति में होगा। लेकिन जो हुआ है वह इसके विपरीत है।

अब जब यह भ्रम टूट चुका है, तब प्रधानमंत्री मोदी ने अपने स्वतंत्रता दिवस के भाषण में भारत के किसानों के हितों को हर कीमत पर सुरक्षित रखने की कसम खायी। चीन और रूस के साथ निकट रिश्ते बनाने के लिए बातचीत शुरू की जा चुकी है। फिर भी अमेरिका से होने वाले आयात पर किसी प्रकार का प्रतिकारात्मक टैरिफ नहीं लगा। उल्टे अमेरिका को संकेत देते हुए अमेरिकी कपास को भारत में आने देते रहने के लिए कपास के आयात पर आयात शुल्क पूरी तरह हटा दिया गया। परिणामस्वरूप कपास का मूल्य कम हो गया है जिससे भारत के कपास उत्पादकों का हित प्रभावित हुआ है। किसान इससे नाराज हैं और उन्हें आशंका है कि अंततः उनके हितों की बलि दे दी जाएगी।

यह रीति-नीति स्पष्ट है, ट्रम्प ने अपने निकटस्थ

मित्रों- कनाडा और योरोपीय संघ को भी नहीं छोड़ा है। ट्रम्प ने हर उस किसी को निचोड़ा है जिसे वह निचोड़ सकता है। चीन फिर भी खड़ा रहा है और वह एक अपवाद सिद्ध हुआ है। भारत ट्रम्प की दो मुख्य मांगों- कृषि क्षेत्र को खोलने तथा रूस के साथ प्रतिरक्षा संबंधों को कम करने को मानने की स्थिति में नहीं है। वह चीन के संघ में भी नहीं है कि वह अमेरिका को कुछ विशेष सहूलियत दे सके।

आशा की एक किरण यही है कि अमेरिका की 'कोर्ट ऑफ अपील' ने ट्रम्प द्वारा आरोपित अधिकांश टैरिफ को गैरकानूनी घोषित कर दिया है। उसने कहा है कि टैरिफ लगाने का अधिकार कांग्रेस में निहित है और अमेरिका का कोई राष्ट्रपति अपनी आपतकालीन शक्तियों का सहारा लेकर ऐसा नहीं कर सकता। इससे अमेरिका द्वारा फरवरी से लगाए गए टैरिफ गैरकानूनी हो जाएंगे और उन्हें वापस लेना पड़ सकता है जबतक कि सुप्रीम कोर्ट इस न्यायिक निर्णय को पलट ही न दे। लेकिन कांग्रेस पर ट्रम्प का नियंत्रण है और वह अपनी मनमानी कर सकता है।

एकतरफा सौदा

अमेरिका ने अनेक देशों से एकतरफा व्यापारिक समझौते किए हैं जिनमें योरोपीय संघ, जापान, द.कोरिया एवं इंग्लैंड शामिल हैं। अन्य के लिए उसने अपनी ओर से टैरिफ की घोषणा कर दी है। योरोपीय संघ से ट्रम्प ने अपने निर्यात के लिए शून्य शुल्क दर प्राप्त कर ली है जबकि योरोपीय संघ से होने वाले आयात पर अब तक लगाए जा रहे शुल्क को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। उसने अपने यहाँ बड़े पूँजीनिवेश का भी वचन ले लिया है, हाँलाकि वह अभी कागज में ही है। जापान ने 550 बिलियन डॉलर और योरोपीय संघ ने 600 बिलियन डॉलर के निवेश का वचन दिया है। इसके अलावा जापान के पूँजीनिवेश से होने वाली कमाई का 90 प्रतिशत अमेरिका में ही बना रहना है। योरोपीय संघ ने 750 बिलियन की गैस एवं प्रतिरक्षा से संबंधित अनिर्धारित सामग्री उससे क्रय करने का वचन दिया है। फ्रांस ने योरोपीय संघ के इस आत्मसमर्पण पर अपनी नाखुशी ज़रूर जाहिर की है किन्तु उसमें कोई बदलाव नहीं हुआ है। यह देश अपनी प्रतिरक्षा के लिए अमेरिका पर निर्भर हैं और ट्रम्प इसका फायदा उठाकर अपनी एकतरफा सौदेबाजी के लिए उनकी बांह मरोड़ने में लगा है। एक बार जब यह बड़े व्यापारिक सहयोगी आत्मसमर्पण कर देंगे तो अन्य भी वही करने के लिए बाध्य हो जाएंगे।

जिन देशों ने इसका प्रतिरोध किया है उन पर अधिक टैरिफ लाद दिया। कनाडा पर 25 से बढ़ाकर 30 प्रतिशत का टैरिफ लगा दिया था लेकिन अब उससे पीछे हटते हुए प्रतिशोधी टैरिफ में कमी की जा रही है क्योंकि इसकी अर्थव्यवस्था को बहुत अधिक नुकसान होने लगा था। ब्राजील को 50 प्रतिशत् टैरिफ का तथा चीन और द.अफ्रिका को 30-30 प्रतिशत् टैरिफ का सामना करना पड़ रहा है। आश्चर्यजनक रूप से रूस को आधारभूत 10 प्रतिशत् टैरिफ का ही सामना करना पड़ा है। लेकिन इससे उस पर कम ही फर्क पड़ना है क्योंकि वह पहले से ही आर्थिक प्रतिबन्धों को झेल रहा है।

अमेरिका द्वारा टैरिफ को बढ़ाया जाना उसकी 'संरक्षतावादी नीति' का परिचायक है न कि 'परस्परता' का, जैसा कि दावा किया गया है। यह एक विडम्बना है कि विश्व का सबसे धनी और तकनीकि रूप से सर्वाधिक विकसित देश अपने को भारत, म्यॉनमार और अफ्रीका के गरीब देशों से खुद को संरक्षित करने में लगा है। पूरी दुनिया में इससे असंतोष है लेकिन अमेरिका के आर्थिक और सैनिक प्रभुत्व के सामने सभी लाचार दिख रहे हैं।

ट्रम्प की सफलता का कारण वस्तुतः उसके बड़े व्यापारिक मित्रों द्वारा कोई समान प्रतिरोध खड़ा न कर पाना है। शुरू में यह लग रहा था कि चीन, योरोपीय संघ, द.पू. एशियाई देशों और भारत से बात कर रहा है। यह भी लगा कि 'ब्रिक्स' अमेरिका को चुनौती दे सकता है। लेकिन इन देशों के बीच परस्पर विश्वासहीनता और उनकी अपनी प्रतिरक्षा की व्यवस्थाओं के चलते इनके बीच किसी प्रकार की एकता संभव नहीं हुई। देशों को चीन के माल की डम्पिंग से खतरा रहा है। और, प्रत्येक देश को लगा कि वह 'तुम्हारे पड़ोस का भिखारी' की तर्ज पर अपने लिए कोई बेहतर सौदा कर पाएगा। भारत ने अमेरिका को अलग से खुश करने के लिए अपने फरवरी के बजट में आयात दरों में चुपचाप कटौती करने, अमेरिका से ऊर्जा के आयात को बढ़ाने तथा उससे अधिक प्रतिरक्षा सामग्री खरीदने का प्रस्ताव किया। यह इसके प्रत्युत्तर में अपने लिए अन्य प्रतिद्वन्द्वियों के मुकाबले टैरिफ कम कराने की अपेक्षा से ही किया गया था।

यदि अमेरिका के प्रमुख व्यापारिक मित्र इन ऊँची

टैरिफ दरों के विरुद्ध एकजुट हो पाते और अमेरिका से होने वाले आयात पर प्रतिशोधात्मक रुख अपनाते तो अमेरिका को पीछे हटना ही पड़ता। लेकिन इसकी आशा समाप्त हो चुकी है और सभी देशों को इससे प्रभावित होना है- किसी को कुछ ज्यादा किसी को कुछ कम- जबतक कि अमेरिका की अदालत ही टैरिफ के विरुद्ध कोई फैसला नहीं देती।

विहंगम् गत्यात्मकता/व्यापक क्रिया-प्रतिक्रिया/ (The Macro Dynamics)

इसके अन्तर्निहित वैश्विक प्रभाव क्या हैं? ट्रम्प ने पूँजीवाद के क्रूर चेहरे 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' को सामने ला दिया है। बहुपक्षीय लेन-देन की पुरानी व्यवस्था को बदला जा चुका है। वह उन उद्योगों को जो बाहर थे उन्हें अमेरिका में वापस लाना चाहते हैं जिससे अमेरिका के कामगारों के लिए अच्छे रोजगार पैदा किए जा सकें। ऑटोमोबाइल्स, स्टील, एल्युमीनियम, इलेक्ट्रॉनिक्स, टेक्सटाइल्स, जूते, पटाखे, बिजली-बल्ब, बैटरी आदि का उत्पादन कम पारिश्रमिक देने वाले देशों में केंन्द्रित हो गए हैं। इससे अमेरिका के उपभोक्ताओं को बड़े स्तर पर लाभ पहुंचाने वाली सस्ती वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध रही हैं जो उन्हें अपनी औकात से अच्छा जीवन-यापन करने के योग्य बनाता रहा था। अमेरिका के कामगारों को अच्छे रोजगारों की कमी की प्रतिपूर्ति दैनन्दिन उपयोग की लगभग सभी वस्तुओं के दामों में कमी के द्वारा की जाती रही है। गरीब देशों में मिठाई की दुकानों में कम मजदूरी पर काम करने वाले मजदूर इसका नुकसान उठाते हैं। ठेठ पूॅंजीवाद को अपनाने में राष्ट्रपति ट्रम्प ने इन कारकों को ध्यान में नहीं रखा है और जैसा कि हम आगे देखेंगे अब अमेरिका को इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा।

अमेरिका द्वारा अपने व्यापारिक सहयोगियों पर टैरिफ बढ़ाए जाने के तीन परिणाम समझे जा सकते हैं।

यदि सभी सामग्रियों पर ऊँचे टैरिफ के चलते उत्पादन का कुछ भाग अमेरिका में स्थानान्तरित होता भी है तो यह अभी से ज्यादा मंहगे होंगे। अमेरिका में ही यदि ज्यादा वस्तुएं उत्पादित होती हैं अथवा वह बाहर से मंगायी जाती हैं, उनके दाम बढ़े होंगे। जबतक कि अमेरिका में कामगारों के पारिश्रमिक एकदम से घटाए नहीं जाते। लिहाजा, जो भी रास्ता अपनाया जाए कामगारों की क्रय शक्ति कम ही होनी है और अमेरिका की अर्थ व्यवस्था में मांग की दर नीचे जाएगी। इसका परिणाम अन्य देशों से आयात में कमी और वैश्विक मांग में गिरावट के रूप में नजर आएगा।

अगर निर्यातक इस ऊँची टैरिफ के प्रभाव को कम करने के लिए अपने मुनाफे में कुछ कटौती भी स्वीकार करना चाहेंगे तब भी अमेरिका में दामों में इजाफ़ा होगा। और, अमेरिका में कम दाम पर उत्पादन संभव नहीं हो पाएगा। अतः ट्रम्प, जैसा कि वह चाहते हैं, अमेरिका में निर्माण से जुड़े रोजगार वापस लाने में सफल नहीं होंगे। चूँकि निर्यात में बहुत प्रतिद्वन्द्विता है, अतः निर्यातकों के लिए अपने मुनाफों में कमी करना भी सीमित होगा। उदाहरण के लिए, चीन, वियतनाम, बंगलादेश आदि कपड़ों और परिधानों का निर्यात करते हैं। निर्यातक अपने मुनाफों में कोई बड़ी कमी तभी कर सकेंगे जब उनकी सरकारें उन्हें कुछ छूट प्रदान करेंगी। भारत के लिए 50 प्रतिशत् टैरिफ से जूझने के लिए यह छूट काफ़ी बड़ी हो सकती है जिससे बजट में घाटा बढ़ेगा। इसके साथ ही उत्पादक अपने कामगारों/श्रमिकों को पहले से ही कम पारिश्रमिक को और कम कर देंगे। इस तरह केवल अमेरिका में ही मांग नहीं गिरेगी बल्कि उन निर्यातक देशों में भी गिरेगी जहाँ उत्पादन और रोजगार प्रभावित होगा।

ट्रम्प ने अमेरिका के कामगारों में इस सौदेबाजी से खुशफहमी पैदा करने के लिए यह कहा है कि अमेरिका उन (विदेशी) निर्यातकों से अरबों/खरबों डॉलर कमायेगा जिसका लाभ उनके करों में कटौती के द्वारा उन तक भी पहुंचेगा। वह भूल रहे हैं कि प्राशुल्क बढ़ने का प्रभाव वस्तुओं के दामों में बढ़ोतरी होती है। अतः निर्यातकों द्वारा अपने मुनाफों में कमी स्वीकार करने बावजूद अमेरिका के नागरिकों को अधिक मूल्य देने होंगे। इससे वह ऊँचे टैरिफ के द्वारा अपने उपभोक्ताओं से ज्यादा वसूलेगा और फिर इसका कुछ भाग उन्हें वापस देगा। यह रकम प्रत्येक नागरिक की जेब से निकलने वाले पैसों से कम ही होगी क्योंकि वस्तुओं के मूल्य टैरिफ से वसूल होने वाली वसूली से बहुत अधिक होंगे। इसके अलावा व्यवसायों के हक में ट्रम्प के झुकाव को देखते हुए यह माना जा सकता है कि इसका बड़ा हिस्सा आम नागरिक के बजाय व्यवसायों को ही दिया जाएगा। इसका कुल मतलब यह होगा कि आम उपभोक्ता को टैक्स का कुछ भाग वापस मिलने के बावजूद उनकी क्रयशक्ति घटी होगी और मांग प्रभावित होगी।

इस प्रकार इन पारस्परिक उपायों का जो भी

हिसाब लगा लें टैरिफ के बढ़ाए जाने से अमेरिका में वस्तुओं के मूल्य बढ़ेंगे और कामगारों की वास्तविक आय प्रभावित होगी जिससे कुल मांग में गिरावट के साथ अमेरिका में आर्थिक गतिहीनता या मुद्रास्फितिजनक स्थिति पैदा होगी। इसका मुकाबला अर्थिक नियोजन में बढ़ोत्तरी के द्वारा किया जा सकता था लेकिन अनिश्चितताओं के बढ़ते जाने एवं अन्य मुद्राओं के मुकाबले डॉलर का मूल्य कम होने से यह संभव नहीं लगता।

ऊँची टैरिफ के प्रभाव की श्रृंखला का अन्य वैश्विक प्रभाव भी पड़ सकता है। जैसे मांगों में कमी के चलते यदि वैश्विक व्यापार में शिथिलता आती है तो प्रत्येक उस देश के पास उन वस्तुओं का आधिक्य होगा जिन्हें वह अमेरिका को बेचता था। प्रत्येक देश अपने इन अतिरिक्त सामानों के लिए बाजार खोजने की मार करेगा और इससे कहीं कहीं डम्पिंग भी होगी। उदाहरण के लिए भारतीय निर्यातक योरोपीय संघ में अधिक बाजार की तलाश कर रहे हैं और अफ्रिका में व्यापार बढ़ाने की सोच रहे हैं। यदि डम्पिंग होती है तो प्रत्येक देश एक-दूसरे पर टैरिफ बढ़ाने के लिए बाध्य होगा और फिर एक चौतरफा टैरिफ युद्ध शुरू हो जाएगा। इस टैरिफ युद्ध से बचने के लिए देशों के बीच परस्पर विश्वास होना ज़रूरी है और अतिरिक्त माल के लिऐ आपस में समन्वय बैठाना होगा क्योंकि अमेरिकाअ. से आयात घटेगा और उसका स्थान अन्य देश ले सकते हैं। टैरिफ युद्ध के चलते सभी जगह मूल्यों में वृद्धि हो सकती है, वैश्विक व्यपार में गिरावट आ सकती है और वैश्विक अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ सकती है जो वैश्विक मुद्रास्फिति की स्थिति होगी।

कुछ विश्लेषकों का मत है कि अमेरिका की अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फिति का संकेत नहीं मिला है जबकि ट्रम्प को राष्ट्रपति के रूप में बने हुए सात माह हो चुके हैं और सट्टा बाजार भी फल फूल रहा है। यह वस्तुतः व्यापारियों द्वारा टैरिफ में बढ़ोत्तरी की आशंका से सामग्रियों को पहले से बटोर लेने, बड़ी तकनीकि कम्पनियों के शेयरों के दाम में बड़ी बढ़ोत्तरी तथा अप्रवासियों के मनमाने ढंग से गिरफ्तारी के भय से काम पर जाने से बचने के कारण माना जा सकता है। यह सब अस्थायी कारक हैं। जुलाई और अगस्त में नए रोजगारों के निर्माण में कमी आई है और मुद्रास्फिति कुछ बढ़ी है। अतः अभी इसके प्रभाव का अनुभव होने में कुछ समय है।

भारत की रणनीति

भारत एक बन्धन में है। वह ट्रम्प की मांग स्वीकार नहीं कर सकता और रूस से व्यापार के कारण दण्डात्मक शुल्क का सामना कर रहा है। अमेरिका के अधिकारियों द्वारा हर दिन विरोघी वक्तव्य दिए जाना भारत सरकार के लिए अमेरिकाअ. की मांग को चुपचाप स्वीकार करने के प्रयास को और पेंचीदा बना रहा है। भारत की कमजोरी तकनीकि और सैनिक दोनों ही स्तर पर है। यही कारण है कि वह चीन की तरह उसका प्रतिरोध नहीं कर पा रहा। ट्रम्प जानते हैं कि भारत अमेरिका पर निर्भर है तथा पिछले बीस वर्षो से जब से भारत पश्चिम की ओर झुका है रूस उसका बहुत सहायक नहीं रहा है। ट्रम्प भारत की इस रणनीतिक असमर्थता का लाभ उठा रहे हैं।

यदि भारत ट्रम्प के निर्देशों को मान भी लेता है, तब भी उसे 10 प्रतिशत का आधारभूत टैरिफ देना होगा जो पिछले 3 प्रतिशत से अधिक होगा। टैरिफ एवं अमेरिका में संभावित आर्थिक गतिहीनता के चलते निर्यात कम होना है। इसके अतिरिक्त भारत की कृषि को अमेरिकी आयात से प्रतिस्पर्धा करनी होगी जो हमारे गरीब किसानों के लिए संभव नहीं है। अंततः ऊँची टैरिफ से निपटने के लिए मुनाफे एवं मजदूरी दोनों ही कम होंगे। निर्यातकों को टैक्स में छूट देने से बजट का भी प्रभावित होना संभव है। बजट की कमी के बढ़ने का प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में होने वाले व्यय तथा कामगारों के जीवन यापन पर पड़ेगा। यदि वैश्विक स्तर पर टैरिफ युद्ध शुरू हो गया तो स्थिति और भी भयानक हो सकती है।

भारत की इस दुर्दशा का कारण क्या है? यह उसकी पिछली रणनीतिक गलतियों के कारण है। इसकी विस्तृत अर्थ व्यवस्था जो इसकी बड़ी जनसंख्या की वजह से है उसका एक बड़ा हिस्सा कम वेतन/मजदूरी और कम क्रयशक्ति से युक्त असंगठित क्षेत्र से जुड़ा है। अतः भारत का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) इसलिए अधिक नहीं है कि इसके नागरिकों की आय अधिक है जैसा कि इसकी जीडीपी में 'प्रति व्यक्ति आय' से प्रकट है बल्कि उसका कारण इसका सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश होना है। यह तथ्य भारत के अमीर देशों, रूस और चीन पर आवश्यक तकनीकि के लिए निर्भर होने से और भी बढ़ जाता है। यह दो कारण भारत के उस स्वायत्त व्यवहार में

कमजोरी को दर्शाते हैं जो किसी बड़ी शक्ति के लिए ज़रूरी होती है।

1991 के बाद से भारत अपनी बड़ी जनसंख्या के बीच मांग को बढ़ाने की बजाय अपने बाजार के विस्तार के लिए अपने निर्यात पर अधिकाधिक निर्भर होता गया। अब जब वैश्विक व्यापार धोखे में है यह रणनीति आन्तरिक चुनौतियों को और बढ़ाएगी। कुछ विश्लेषकों का मानना है कि भारत के लिए यह आपदा में अवसर जैसा है और उसे व्यवसाओं के पक्ष में ही बड़े नीतिगत परिवर्तन करने चाहिए। लेकिन यही तो 1991 से और फिर 2014 के बाद से और अधिक जोर से किया जाता रहा है। कॉर्पोरेट टैक्स दरों में कटौती की जाती रही, संगठित क्षेत्र को लाभ पहुंचाने के लिए जीएसटी लागू की गयी आदि, परन्तु अर्थ व्यवस्था में गिरावट जारी ही रही। जबकि यह मामला असमानता के बढ़ने के कारण मांग में कमी एवं अपर्याप्त निजी नियोजन का है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अमेरिका यदि स्वयं अपनी आगत समस्याओं के कारण अपनी नीति में परिवर्तन भी करता है तब भी भारत को अपनी रणनीति में परिवर्तन करते हुए अपनी आंतरिक मांग को बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए। प्रधान मंत्री ने इधर हाल में कई बार इसका संकेत किया है। इसके लिए उसे अपनी नीति में बड़ा परिविर्तन करते हुए रोजगारों को बढ़ाने, शिक्षा, अनुसंधान एवं विकास (आर एण्ड डी) एवं स्वास्थ्य के संरक्षण द्वारा असंगठित क्षेत्र में लगे हुए 94 प्रतिशत् लोगों पर ध्यान देने की ज़रूरत है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को भी पुनर्विवेचित करने की ज़रूरत है जिससे किसी भी एक शक्ति पर उसकी अत्यधिक निर्भरता को समाप्त किया जा सके।

'इंडियन इकॉनामी'ज़ ग्रेटेस्ट क्राइसिसः इम्पैक्ट ऑफ द कोरोनावायरस एण्ड द रोड अहेड', 2020 के

आर्थिक समानता

रचनात्मक काम का यह अंग अहिंसापूर्ण स्वराज्य की मुख्य चाबी है। आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है, पूँजी और मजदूरी के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर से जिन मुट्ठीभर पैसेवाले लोगों के हाथ में राष्ट्र की संपत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है, उनकी संपत्ति को कम करना और दूसरी ओर से जो करोड़ों लोग अधपेट खाते और नंगे रहते हैं उनकी संपत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठीभर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेइन्तहा अन्तर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलनेवाली राज-व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आज़ाद हिन्दुस्तान में देश के बड़े-से-बड़े धनिकों के हाथ में हुकूमत का जितना हिस्सा रहेगा उतना ही ग़रीबों के हाथ में भी होगा; और तब नई दिल्ली के महलों और उनकी बगल में बसी हुई ग़रीब मजदूर बस्तियों के टूटे-फूटे झोंपड़ों के बीच जो दर्दनाक फर्क आज नज़र आता है, वह एक दिन को भी नहीं टिकेगा। अगर धनवान लोग अपने धन को और उसके कारण मिलनेवाली सत्ता को खुद राजी - खुशी से छोड़कर और सब के कल्याण के लिए सब के साथ मिलकर बरतने को तैयार न होंगे, तो यह तय समझिये कि हमारे देश में हिंसक और खूंखार क्रांति हुए बिनान रहेगी।

ट्रस्टीशिप या सरपरस्ती के मेरे सिद्धान्त का बहुत मजाक उड़ाया गया है, फिर भी मैं उस पर कायम हूँ। यह सच है कि उस तक पहुँचने यानी उसका पूरा-पूरा अमल करने का काम कठिन है। क्या अहिंसा की भी यही हालत नहीं ? फिर भी 1920 में हमने यह सीधी चढ़ाई चढ़ने का निश्चय किया था। अब तक हमने उसके लिए जो पुरुषार्थ किया है वह कर लेने जैसा था, इसे अब हम समझ चुके हैं। इस पुरुषार्थ की खास बात यह है कि रोज-रोज की खोज और कोशिश से हमें अधिकाधिक यह जान लेना है कि अहिंसा का तत्त्व किस तरह काम करता है। काँग्रेसवालों से यह उम्मीद की जाती है कि वे सब संजीदगी और लगन के साथ, सचेत रहकर, इस बात का पता लगायें कि अहिंसा क्या चीज है, क्यों उसका व्यवहार करना है, और वह किस तरह अपना काम करती है। सब को इस सवाल पर भी सोचना है कि आज की सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य- मनुष्य के बीच जो तरह-तरह की असमानताएँ मौजूद हैं, वे हिंसा से दूर होंगी या अहिंसा से। मेरे खयाल में हिंसा का रास्ता कैसा है, यह हम जानते हैं। उस रास्ते समानता के मामले में कहीं सफलता मिली हमने जानी नहीं।

अहिंसा के जरिये समाज में हेरफेर करने के प्रयोग अभी चल रहे हैं, और उनकी तफसील तैयार हो रही है। इन प्रयोगों में प्रत्यक्ष दिखाने जैसा तो कोई खास या बड़ा काम हमने किया नहीं है। मगर यह तय है कि चाल कितनी ही धीमी क्यों न हो, फिर भी इस तरीके पर समानता की दिशा में काम तो शुरू हो चुका है। और चूँकि अहिंसा का रास्ता हृदय-परिवर्तन का रास्ता है, इसलिए उसमें जो भी हेरफेर होते हैं वे कायमी होते हैं। जिस समाज या राष्ट्र की रचना अहिंसा की नींव पर हुई है, वह अपनी इमारत पर होनेवाले तमाम बाहरी या अन्दरूनी हमलों का सामना करने की ताकत रखता है। राष्ट्रीय काँग्रेस में धनवान काँग्रेसी भी हैं। इस मामले में पहल करके उन्हें औरों को रास्ता दिखाना है। स्वराज्य की हमारी यह लड़ाई हरएक काँग्रेसी को इस बात का मौका देती है कि वह अपने दिल की पूरी गहराई में उतरकर अपने आपको जाँचे-परखे। अपनी लड़ाई के अन्त में हमें जिस हिन्दुस्तान की रचना करनी है, उसमें यदि समानता को सिद्ध करना हो, तो उसकी बुनियाद अभी से पड़नी चाहिए। जो लोग यह समझकर चलते हैं कि बड़े-बड़े सुधार तो स्वराज्य कायम होने पर ही होंगे या किए जाएँगे, वे सब जड़ से ही इस बात को समझ ने में गलती करते हैं कि अहिंसक स्वराज्य का काम किस तरह होता है। यह अहिंसक स्वराज्य किसी अच्छे मुहूर्त में अचानक आसमान से नहीं टपक पड़ेगा। बल्कि जब हम सब मिलकर एक साथ अपनी मेहनत से एक-एक ईंट चुनते चलेंगे, तभी स्वराज्य की इमारत खड़ी हो सकेगी। इस दिशा में हमने काफी लम्बी और अच्छी मंजिल तय की है। लेकिन स्वराज्य की सम्पूर्ण शोभा और भव्यता का दर्शन करने से पहले हम को अभी इससे भी ज्यादा लम्बा और थकाने वाला रास्ता तय करना है। इसलिए हरएक काँग्रेसी को अपने आपसे यह सवाल पूछना है कि इस आर्थिक समानता की स्थापना के लिए उसने क्या किया है?

(रचनात्मक कार्यक्रम : उसका रहस्य और स्थान)

गुलाम दिमाग की भारतमाता

प्रेम सिंह

कभी-कभी जैसे ही मैं किसी सभा में पहुंचता था, मेरे स्वागत में अनेक कंठों का स्वर गूंज उठता था – 'भारत माता की जय'। मैं उनसे अचानक प्रश्न कर देता कि इस पुकार से उनका क्या आशय है? यह भारत माता कौन है, जिसकी वे जय कहते हैं, मेरा प्रश्न उन्हें मनोरंजक लगता और चकित करता। . . . आखिर एक हट्टा-कट्टा जाट, जिसका न जाने कितनी पीढ़ियों से मिट्टी से अटूट नाता है, जवाब में कहता कि यह भारत माता हमारी धरती है, भारत की प्यारी मिट्टी। मैं फिर सवाल करताः 'कौन-सी मिट्टी? - उनके अपने गांव के टुकड़े की, या जिले और राज्य के तमाम टुकड़ों की, या फिर पूरे भारत की मिट्टी?'प्रश्नोत्तर का सिलसिला तब तक चलता रहता जब तक वे प्रयत्न करते रहते और आखिर कहते भारत वह सब कुछ तो है ही जो उन्होंने सोच रखा है, उसके अलावा भी बहुत कुछ है। भारत के पहाड़ और नदियां, जंगल और फैले हुए खेत जो हमारे लिए खाना मुहैया करते हैं सब हमें प्रिय हैं। लेकिन जिस चीज का सबसे अधिक महत्व है वह है भारत की जनता, उनके और मेरे जैसे तमाम लोग, वे सब लोग जो इस विशाल धरती पर चारों ओर फैले हैं। भारत माता मूल रूप से यही लाखों लोग हैं और उनकी जय का अर्थ है इसी जनता जनार्दन की जय। मैंने उनसे कहा तुम भारत माता के हिस्से हो, एक तरह से तुम खुद ही भारत माता हो।' (जवाहरलाल नेहरू, 'भारत की खोज')।

हर साल 5 जून को मनाए जाने वाले विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर केरल की राज्य सरकार और वहां के राज्यपाल राजेंद्र विश्वनाथ अर्लेकर के बीच राज्यपाल भवन में आयोजित एक कार्यक्रम में भारत माता के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस)द्वारा प्रायोजित चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करने को लेकर विवाद हुआ। कार्यक्रम में कृषि मंत्री पी प्रसाद और शिक्षा मंत्री वी शिवनकुट्टी को भी रहना था। लेकिन जब कृषि मंत्री पी प्रसाद को पता चला कि तय कार्यक्रम से हट कर भारत माता के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करने का कार्यक्रम भी जोड़ दिया गया है तो उन्होंने आयोजन से अपने को अलग कर लिया। उन्होंने कहा कि विश्व पर्यावरण दिवस समारोह के लिए राजभवन ने एक मिनट-दर-मिनट कार्यक्रम तैयार किया था, लेकिन शुरुआत में उसमें भारत माता के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करने का कोई प्रावधान नहीं था। कार्यक्रम की पूर्व संध्या प्रहर में एक नया कार्यक्रम भेजा गया, जिसमें भारत माता के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करना भी शामिल था।

पी प्रसाद जो पहली बार विधायक बने हैं और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) के नेता हैं, ने कहा कि मैंने इस बाबत राजभवन से पूछताछ की और उनसे भारत माता का वह चित्र भेजने को कहा जिस पर पुष्पांजलि अर्पित की जानी थी। वह आरएसएस द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला चित्र था, जिसकी कोई आधिकारिक मान्यता नहीं है। मैंने राजभवन को सूचित किया कि हम उस चित्र पर पुष्पांजलि नहीं चढ़ा सकते। राजभवन ने जवाब दिया की चित्र नहीं हटाया जाएगा।

पी प्रसाद ने कहा कि आज़ादी के बाद से संविधान या सत्ता में रही किसी भी सरकार ने कभी भी भारत माता के चित्र-विशेष को आधिकारिक या अधिकृत संस्करण के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने आगे कहा कि इस कार्यक्रम में इस्तेमाल होने वाले चित्र पर भारतीय ध्वज नहीं, बल्कि एक राजनीतिक संगठन का ध्वज है, इसलिए किसी सरकारी कार्यक्रम के दौरान इसका सम्मान नहीं किया जा सकता। मंत्री ने कहा कि कोई भी राजनीतिक संगठन और राज्यपाल अपने निजी कार्यक्रमों में भारत माता के अपने पसंदीदा चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन राज्य सरकार के कार्यक्रमों में ऐसा नहीं किया जा सकता।

उन्होंने आगे कहा कि हम सभी का एक राजनीतिक दृष्टिकोण होता है, लेकिन संवैधानिक पदों

पर बैठे लोगों के लिए इसे व्यक्त करने के तरीके सीमित होते हैं। मंत्री ने यह भी सवाल उठाया कि राज्यपाल इस मुद्दे पर अड़ियल क्यों बने हुए हैं, जबकि राज्य के किसी भी पूर्व राज्यपाल, यहां तक कि देश के राष्ट्रपतियों ने भी अतीत में ऐसा नहीं किया है। संवैधानिक पदों पर बैठे लोग सरकारी कार्यक्रमों को राजनीतिक आयोजनों में नहीं बदल सकते। राज्य के शिक्षा मंत्री वी. शिवनकुट्टी ने राय व्यक्त की कि राजभवन और राज्यपाल राजनीति से ऊपर हैं, और अर्लेकर को अपने पद से हट जाना चाहिए।

बहरहाल, राज्यपाल ने राज्य सरकार के पक्ष और बहिष्कार की परवाह नहीं की। उन्होंने राजभवन के कार्यक्रम में आरएसएस प्रायोजित भारत माता के चित्र का उपयोग किया। जबकि राजभवन का रुख जानने के बाद राज्य सरकार ने कार्यक्रम को सचिवालय के दरबार हॉल में स्थानांतरित कर दिया। राजभवन ने सरकार के कार्यक्रम से अलग अपना कार्यक्रम जारी रखा। कार्यक्रम के बाद राज्यपाल ने कहाकि किसी भी दबाव के तहत भारत माता के साथ कोई समझौता नहीं किया जाएगा। जाहिर है, वे आरएसएस प्रायोजित भारत माता की छवि को ही सही (और अधिकृत भी) मानते हैं।)

स्वतंत्रता आंदोलन के दौर से ही 'भारत माता' को परिभाषित और व्याख्यायित करने की परंपरा मिलती है। यह परंपरा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए सशस्त्र बगावत करने वाले 1857 के लड़ाकों, भूमिगत क्रांतिकारियों,वृहद पैमाने पर जनता के आंदोलन करने वाले नेताओं और उन आंदोलनों में हिस्सेदारी करने वाली भारतीय जनता तक फैली है। भारत की सभी भाषाओं के साहित्यकारों, कलाविदों,कलाकारों, विद्वानों ने अपनी रचनाओं और प्रस्तुतियों के माध्यम से उस विमर्श में अपनी भूमिका निभाई है। जवाहरलाल नेहरू और राममनोहर लोहिया जैसे दार्शनिक प्रतिभा वाले नेताओं ने अपनी लेखनी और वक्तृताओं से भारत माता के स्वरूप से जुड़े विमर्श को समृद्ध किया है। इस सबके चलते भारतीय जनमानस में भारत माता की विविध छवियां कल्पित हुई हैं, जिनके आधार पर भारत माता के कई चित्र उपलब्ध होते हैं। ये चित्र प्रतिष्ठित कलाकारों से लेकर बच्चों तक नेबनाए हैं। इनमें धार्मिक मिथक प्रेरितचित्रों –देवीरूप में भारत माता की कल्पना -से लेकर धर्म-तटस्थ चित्र मिलते हैं। विशिष्ट राष्ट्रीय पर्वों पर बच्चे भारत माता के रूप में चाव से सजते भी हैं। कह सकते हैं कि इस पूरे परिदृश्य में देश के नक्शे की पृष्ठभूमि में तिरंगे परिधान में तिरंगा ध्वज हाथ में लेकर खड़ी भारत माता की छवि को अघोषित राष्ट्रीय मान्यता मिली हुई है। भारत माता का यह रूप देश की भौगोलिक बनावट,विपुल प्राकृतिक सम्पदा और समस्त देशवासियों के अस्तित्व को अपने में समाहित करने के साथ बलिदान और स्वतंत्रता की चेतना का प्रतीक है।

आरएसएस की भारत माता के हाथ में उसके संगठन का भगवा झंडा होता है, न कि भारत का। आरएसएस के चित्र में आभूषणों से सुसज्जित भारत माता शेर का सहारा लेकर खड़ी है, जिसकी पृष्ठभूमि में 'अखंड भारत' का नक्शा है, न कि भारत या भारतीय उपमहाद्वीप का। इस भारत माता के 'साधक' आरएसएस को न आज़ादी के पहले की साम्राज्यवादी गुलामी से विरोध था, न अभी की नवसाम्राज्यवादी गुलामी से। केरल के राज्यपाल ने राजभवन में आयोजित कार्यक्रम में इसी चित्र का उपयोग किया; और जब उन्होंने कहा कि भारत माता के मुद्दे पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता, तो वे यही कह रहे हैं कि आरएसएस की भारत माता ही असली भारत माता है। अर्थात,भारत में आरएसएस की सरकार है, तो सरकारी आयोजनों में भारत माता भी आरएसएस की होगी!

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आरएसएस ने स्वतंत्रता संघर्ष के खिलाफ साम्राज्यवादियों का साथ दिया था, या उसने भारतीय संविधान, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्र-गान का स्पष्ट अस्वीकार किया था। ये इतिहास के सर्वविदित तथ्य हैं। आश्चर्य की बात यह है कि वह अपनी स्थापना के 100 साल बाद भी अपनी देशभक्ति के खोखलेपन को समझ नहीं पाया है। यह समझने की तो शायद वह योग्यता ही गंवा बैठा है कि राजनीतिक सत्ता के बल पर बलिदान और स्वतंत्रता की चेतना से विहीन भारत माता की छवि थोप कर वह भारत माता का ही सतत अपमान करता है; और संततियों को भी उस लीक पर डालने कि कोशिश करता है। जड़ता की इतनी लंबी स्थिति न किसी व्यक्ति के लिए, न ही समूह/संगठन के लिए, न ही समाज और देश के लिए सही मानी जा सकती है।

आरएसएस कतिपय प्रयासों के बावजूद इस जड़ता को नहीं तोड़ पाता है, इसके मुख्यतः दो कारण लगते हैं। पहला, आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के सभी विमर्श और विचार ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ टकराहट से पैदा होते हैं। जबकि आरएसएस का 'हिंदू-राष्ट्रवाद' एक पुरातनपंथी मानसिकता में रचा-बसा है। लिहाजा, भारतीय नवजागरण की विविध अभिव्यक्तियों से आरएसएस का रिश्ता नहीं जुड़ पाता। दूसरा, स्वतंत्रता आंदोलन की विचारधाराओं और उनसे जुड़ी शख्सियतों के साथ आरएसएस का सलूक हाईजैक करने का होता है। उसकी नीयत उन्हें 'हिंदुत्व' अथवा 'हिंदू-राष्ट्रवाद' की जड़ीभूत मानसिकता के पक्ष में इस्तेमाल करने की होती है। हिंदू धर्म के विविध संप्रदायों, अन्य धर्मों और दलित-आदिवासी समुदायों के साथ भी उसका सलूक इसी तरह का है। जड़ता को तोड़ने के लिए विचार के विविध स्रोतों के साथ स्वस्थ संवाद बनाने की योग्यता विकसित करना जरूरी होता है। सभी मनुष्यों और उनके संगठनों में यह संभावना होती है। आरएसएस को भी उसका अपवाद नहीं बने रहना चाहिए।

अर्लेकर इस कार्यक्रम के आगे-पीछे भी इस तरह का विवाद पैदा करते रहे हैं। दरअसल, भाजपा सरकार के ज्यादातर राज्यपालोंकी कमोबेश यही स्थिति है। वे पद की गरिमा और संवैधानिक शिष्टाचार के बरक्स भाजपेतर राज्य सरकारों के साथ उलझते रहते हैं। उनमें यह हिम्मत कहां से आती है? अर्लेकर की आरएसएस की भारतमाता पर समझौता नहीं करने की सीनाजोरी में पर एनडीए में शामिल 'सेकुलर' और 'सामाजिक न्यायवादी' नेताओं ने एतराज नहीं उठाया है। संविधान की अभिरक्षक राष्ट्रपति को इसमें कुछ गलत नजर नहीं आया। न ही सुप्रीम कोर्ट को राज्यपाल द्वारा राज्यपाल भवन में किए गए प्रोटोकाल के उल्लंघन में कुछ गलत लगा। विपक्षी पार्टियों ने अर्लेकर की खुली चुनौती के बावजूद इसे विरोध का जरूरी मुद्दा नहीं बनाया। विपक्षी केरल कांग्रेस ने इस मुद्दे पर कुछ नहीं बोलने के लिए मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन की आलोचना करके अपना कर्तव्य पूरा मान लिया। मानो यह केवल केरल राज्य का एकाकी मुद्दा है। विद्वानों/लेखकों/कलाकारों की तरफ से भी इस पर गंभीर चिंता जाहिर नहीं की गई।

तो क्या आरएसएस की भारत माता ही पूरे देश की भारत माता है? पिछले एक दशक से देश का माहौल ऐसा ही बना हुआ है। शैक्षिक/ साहित्यिक/ कलात्मक संस्थाओं और सरकारी विभागों के कार्यक्रमों में आरएसएस के नेता, विचारक, अधिकारी आदि बिना अवसर और जरूरत के भारत माता की जय का नारा बोलते और उपस्थित लोगों से बुलवाते हैं। यहां करीब साल-डेढ़ साल पहले के एक वाकये का उल्लेख करना चाहूंगा। भोपाल की रवीन्द्रनाथ टैगोर प्राइवेट यूनिवर्सिटी का लेखकों को सम्मानित करने का एक कार्यक्रम मध्य प्रदेश दूरदर्शन पर प्रसारित हो रहा था। उसमें उपस्थित साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हिंदी के एक लेखक और साहित्य अकादमी की पत्रिका 'इंडियन लिटरेचर' की अतिथि संपादक को मैं जानता था। इसलिए चाव से कार्यक्रम देखने लगा। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मध्य प्रदेश के राज्यपाल और शिक्षामंत्री ने अपने भाषण के शुरू और अंत में सभी से भारत माता की जय के नारे लगवाए। भारतीय भाषाओं के कुछ लेखकों के साथ कार्यक्रम में कुछ विदेशी 'भारत-प्रेमी' भी उपस्थित थे। पूरे देश में यह हो रहा है।

नवसाम्राज्यवादी गुलामी के साढ़े तीन दशकों में भारत माता की भक्ति का जुनून बढ़ता गया है। कहा जाता है कि यह देशभक्ति की कसौटी है। मोहन भागवत उपदेश देते रहते हैं कि युवकों को अपनी देशभक्ति का प्रदर्शन करने के लिए भारत माता की जय बोलते रहना जरूरी है। बच्चों में देशभक्ति की भावना पैदा करने और बढ़ाने के कोर्स चलाए जाते हैं। भारत माता की यह भक्ति अपना स्वावलंबन, स्वतंत्रता, संप्रभुता और संवैधानिक शिष्टाचार खोते जाने की पीड़ा से परे होती है। इसमें किसी तरह का कोई जोखिम नहीं है। क्योंकि वह बलिदान की नहीं, पूजा और जयकारों की मांग करती है। नवसाम्राज्यवादी गुलामी के दौर में शासक-वर्ग को ऐसी ही भारत माता चाहिए। ऐसी भारत माता का पेटेंट शुरू से आरएसएस के पास है। उसे अवसर मिला है, जिसका वह पूरा इस्तेमाल कर रहा है।

अंत में कहना चाहूंगा कि इस मुद्दे पर भाकपा नेता पी प्रसाद और बिनोय विश्वम् ने राज्यपाल की हठधर्मिता के बावजूद इस मुद्दे पर बहुत संयत, शालीन, तार्किक और मजबूत ढंग से अपना पक्ष रखा है।

शिक्षा का खेल

महेश विक्रम

शिक्षा समाज के निर्माण, संरक्षण और विकास का कारखाना है। हम जैसा समाज चाहते हैं वैसी ही शिक्षा प्रणाली का निर्माण करते हैं।

क्या हम भूल गए?

शताब्दियों तक शिक्षा प्रमुख सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक परंपराओं के गुरुओं/आश्रमों/मठों के द्वारा अपने अपने आग्रहों और दृष्टिकोणों के अनुसार स्वतंत्र रूप से ही संचालित होती रही थी जिसका स्वरूप बहुत कुछ धार्मिक-सांस्कृतिक ही रहा था, यद्यपि भाषा, अक्षर, छन्द, व्याकरण, तर्कशास्त्र, ज्योतिष, गणित एवं चिकित्सा का ज्ञान भी इसमें सम्मिलित होता रहा था। इससे इतर विषयों/व्यावसायिक विषयों का ज्ञान और प्रशिक्षण प्रशिक्षुओं के स्वतंत्र रूप से ही कतिपय गुरुओं/प्रशिक्षकों/शिल्पकार संगठनों आदि पर निर्भर था। किसी सामाजिक-धार्मिक परंपरा विशेष से जुड़ी तत्कालीन राजनीतिक शक्तियों और समाज से उसे राजनीतिक और आर्थिक संरक्षण या प्रोत्साहन भी मिलता रहा था। शिक्षा का यह स्वरूप संस्थागत् तो था फिर भी वह आज की तरह संगठित नहीं थी।

दूसरे, हमारी वैदिक-ब्राह्मण सामाजिक-धार्मिक परंपरा में शिक्षा का पात्र पितृसत्तात्मक वर्ण/जाति-व्यवस्था के अनुसार उच्च वर्ण ही था और बहुसंख्यक जातियाँ उससे वंचित बनी रही थीं। यद्यपि इस परंपरा के अन्तर्गत ही विश्वविद्यालय तक के आकार के अनेक बड़े बड़े गुरुकुलों का विकास भी हुआ जिसके प्रमुख उदाहरण विभिन्न कालावधियों में तक्षशिला, पांचाल राज्य में नैमिष्यारण्य और प्रयाग में ऋषि भारद्वाज के आश्रम और दक्षिण में कॉची रहे और कतिपय आचार्यों और पंडितों की छोटी बड़ी शालाएँ और मंदिर उसके सामान्य केन्द्र बने रहे। परन्तु वही व्यवस्था थी जिसकी पौराणिक परम्परा के अनुसार एकलव्य को अपना अंगूठा देना पड़ा और शम्बूक को अनधिकृत रूप से तपस्या करने के कारण अपने प्राण गँवाने पड़े। सीता को दो बार अग्निपरीक्षा देने के बाद भी गर्भिणी अवस्था में वन में शरण लेनी पड़ी! तर्क दिया जाता है कि आर्थिक उपार्जन के सभी क्षेत्र और तत्संबंधित प्रशिक्षण अन्य जातियों के लिए सुरक्षित था और उन्हें वेद शिक्षा की जरूरत ही क्या थी! यह नितान्त भ्रामक है। वस्तुतः सामाजिक धार्मिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक प्रभुत्व के विशेष क्षेत्रों के साथ ही आर्थिक संपन्नता के स्रोत भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उच्च वर्णों के लिए सुरक्षित थे जबकि शेष बहुजन उनका मुखापेक्षी ही था और आर्थिक रूप से विपन्न भी। इसके उलट एक बात यह भी थी कि हमारे समाज का विशेषाधिकारी वर्ग उन कलाओं से पूर्णतया अनभिज्ञ रहा जो उत्पादन और निर्माण के लिए ज़रूरी होतीं और इस प्रकार वह स्वयं भी एक प्रकार की अयोग्यता को ओढ़े रहा। इस व्यवस्था के विरुद्ध ही अनेक समानान्तर ज्ञान परम्पराओं यथा जैन बौद्ध लोकायत चार्वाक सिद्ध नाथ आदि दर्शनों का भी विकास हुआ। जैन बौद्ध लोकायत आदि परपराओं में किसी भी वर्ण जाति के गुरुओं और शिष्यों के प्रवेश के द्वार खुले थे। बौद्धों ने तो सही मायने में नालन्दा, वल्लभी, विक्रमशिला और ओदन्तपुरी में अपने मठों को विश्वविद्यालयीय स्वरूप में पहुंचा दिया जिनमें विदेशों तक से जिज्ञासु शिक्षा ग्रहण करने आते थे। परन्तु इनके साथ चले सामाजिक आन्दोलनों को भी अंततः अपनी प्रभुता और सत्ता बनाए रखने में सफल रहे ब्राह्मणीय अभिजात्य वर्ग ने या तो नकार दिया अथवा कुछ का बहुत चतुराईपूर्वक पुरोहितीकरण/ब्राह्मणीकरण कर दिया। परिणामस्वरूप देश की बड़ी संख्या अशिक्षित और स्वयं में विभाजित, ऊँच-नीच के आग्रहों से युक्त, अस्पृश्यता और अवैज्ञानिक धारणाओं से ग्रस्त अंधविश्वासों की शिकार बनी रही जो हमारे सर्वांगीर्ण पतन का कारण भी बना।

मध्यकाल में मुस्लिम सुल्तानों और विशेषकर मुगल बादशाहों ने शिक्षा के लिए मकतबों और मदरसों को प्रोत्साहित किया और देश में अरबी फारसी भाषा का प्रवेश और उससे जुड़ी ज्ञान पद्धतियाँ भी प्रचलित हुयीं, जिसके साथ प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों के अनुवाद आदि का भी सिलसिला चला और एक

सम्मिलित ज्ञान प्रणाली ने स्थान बनाया। इस काल में प्रभावी हुयीं सूफी, सगुण और निर्गुण भक्ति परंपराओं के चलते गैर संस्थागत रूप से ही शिक्षा के क्षेत्र में भी कुछ स्वतंत्र प्रयोग होते रहे। यद्यपि परंपरागत वैदिक-ब्राह्मण शिक्षा अभी भी ब्राह्मण पंडितों, आचार्यों के छोटे छोटे आश्रमों, घरों या मन्दिरों में पूर्व की तरह ही संचालित होती रही परन्तु कतिपय ऐसी पाठशालाएँ भी कुछ क्षेत्रों में समानान्तर रूप से अपना एकाकी अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहीं जिन्हें कोई गुरु या प्रशिक्षक अपने व्यक्तिगत आग्रह स्वरूप सबके लिए खुला रखता था। पूर्वी भारत के छोटा नागपुर/छत्तीसगढ़ में एक ब्राह्मण शिक्षक एक तेली के शेड में एक ब्राह्मण समेत विभिन्न छोटी जातियों को शिक्षा देता था।

अंग्रेजों के आने के पहले तक और उनके शुरुआती दौर में भी देश में शिक्षा का यह परिदृश्य बना रहा था। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक दौर में भारत के समावेशी स्कूलों के रूप में कुछ अपनी पाठशालाएँ भी थीं। इसके समानान्तर ईसाई मिशनरियों ने भी अपने धार्मिक शिक्षण संस्थान खोले जिनमें घार्मिक शिक्षा के साथ ही पश्चिमी ढंग के आधुनिक विषयों का पठन पाठन चलाया गया और अन्ततः अंग्रेजी शासन ने भी हमारे देश में प्रथमतः फारसी/उर्दू मकतबों तथा संस्कृत विद्यालयों की स्थापना कर भारतीयों में अपने प्रति विश्वास पैदा किया और फिर पश्चिमी ढंग की आधुनिक शिक्षा के लिए स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की भी शुरुआत की। अनेक भारतीयों ने भी इसमें उनकी मदद की और उनके तर्ज पर ही अपने आधुनिक ढंग के स्कूलों कॉलेजों का निर्माण कराया। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि अंग्रेजी शासन काल में औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के प्रस्तावक लार्ड मैकाले के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा का कोई महत्व नहीं था। उसके लिए भारत में शिक्षा व्यवस्था का उद्येश्य अंग्रेजी शासन-प्रशासन को मदद पंहुचाने के लिए अंग्रेजों के अधीनस्थ ऐसे अधिकारियों और बाबुओं को शिक्षित-प्रशिक्षित करना था जो उसके प्रति निष्ठावान रहते हुए आम भारतीयों पर रोब बनाए रखने में सहायक हों। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से यह किसी भी प्रकार के जातीय निषेधों से मुक्त थी किन्तु इसका लाभ भी पारंपरिक रूप से समृद्ध हिन्दू मुस्लिम अभिजात्य या उच्च माने गए वर्गों/जातियों ने ही लिया और उनसे समर्थन लेने के उद्येश्य से ही अंग्रेजों ने भी इसमें कोई सुधार नहीं करना चाहा जबकि अधिकांश कमजोर तबके उससे वंचित ही बने रहे। इसी पृष्ठभूमि और इसकी प्रतिक्रिया में ट्रैवनकोर के महाराजा स्वाथी तिरुनाल ने 1834 में 'राजा का फ्री स्कूल' की स्थापना की और महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले के नेत्त्व में स्त्रियों और दलितों के लिए स्कूलों की स्थापना हुयी। अछूत कन्याओं के लिए प्रथम स्कूल पुणे के भिण्डेवाला में खोला गया। 1882 में हंटर कमीशन के समक्ष महात्मा फुले ने सरकार द्वारा आम जन की शिक्षा की व्यवस्था के लिए प्रभुता संपन्न जातियों के सापेक्ष निम्न जातियों की शिक्षा को प्राथमिकता देने का प्रतिवेदन दिया जिसके अन्तर्गत् उनके लिए सरकार द्वारा अनुदानित विशेष प्राथमिक स्कूलों का सुझाव दिया गया। इसके साथ ही उन्होंने कुछ समय के लिए शिक्षाजनित नौकरियों में ब्राह्मणों के एकाधिकार को रोकते हुए उत्पादक समुदायों (किसानों कारीगरों) से शिक्षकों की नियुक्ति तथा किसानों एवं महिलाओं की शिक्षा पर अधिक व्यय करने की मांग भी रखी। इससे प्रेरित होकर कोल्हापुर के राजश्री साहू जी महाराज ने 1902 में दलितों को 50 प्रतिशत का विशेष आरक्षण देते हुए उन्हें वजीफे सहित शिक्षा प्रदान करने की पहल की और फिर बड़ोदा के महाराजा शयाजी राव गायकवाड़ ने सबके लिए खुले विद्यालय की स्थापना की। पूर्वी भारत में सबको या विशेष रूप से दलितों को शिक्षा प्रदान करने के लिए शैक्षिक और सामाजिक आन्दोलन भी चलते रहे थे। 19वीं सदी में ईश्वरचन्द विद्यासागर ने स्त्रियों सहित सभी के लिए शिक्षा के दरवाजे खोलने के लिए सुधार आन्दोलन किया और स्कूल कॉलेजों की स्थापना का अभियान चलाया। फलस्वरूप बंगाल और बिहार के कतिपय स्कूलों में सभी जातियों के विद्यार्थियों और कुछ अति दलित जाति के शिक्षकों की उपस्थिति भी देखने को मिली। बंगाल में नमोशूद्रों ने अपने बच्चों के लिए अपने घरों में स्कूल चलाए। बंगाल में गुरुचन्द ठाकुर (1846-1937) ने दलितों के अधिकारों और शिक्षा के लिए आन्दोलन छेड़ा था। दलित रघुनाथ सरकार ने ढाका में निम्न जातियों को शिक्षा देने का संकल्प किया। मद्रास में रामचन्द्र पेरियार ने दलितों की शिक्षा तथा पाठ्यक्रमों से धार्मिक शिक्षा को हटाने के लिए आन्दोलन किया।

क्या चाहा और क्या पाया?

आजादी के आंदोलन के साथ पैदा हुई नई सामाजिक चेतना और आजाद भारत की सांवैधानिक

व्यवस्था ने देश को इस असमतामूलक शिक्षा व्यवस्था से मुक्त करने के उद्देश्य से सभी क्षेत्रों और विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में समानता के आधार पर सभी के लिए दरवाजे खोलने और कमजोर रहे तबकों के लिए विशेष संरक्षण और प्रोत्साहन देने के लिए एक नई शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की। प्रारंभ में साधनों की कमी के बावजूद अनेक स्कूल कॉलेज विश्वविद्यालय तकनीकि संस्थान आदि के निर्माण और विस्तार के कार्यक्रम भी चले। लेकिन देश की जनसंख्या और सामाजिक आर्थिक विविधता की दृष्टि से वह बराबर ही अपर्याप्त रहे और उसमें सुधार के लिए गठित होते रहे एक के बाद एक कई शिक्षा आयोगों के परामर्श के अनुसार उसमें कुछ सुधार भी किए जाते रहे। अंततः 1965-1966 में आयी कोठारी आयोग की सिफारिशें इस दृष्टि से विशेष विचारणीय रहीं। उनकी सिफारिश थी कि राष्ट्रीय बजट का कम से कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय होना आवश्यक है और हर ग्राम के स्तर तक पड़ोसी स्कूलों की व्यवस्था अनिवार्य है। हाँलाकि ऐसा कभी नहीं हो सका फिर भी देश में केन्द्रीय एवं नवोदय विद्यालयों की व्यवस्था ने अपना एक प्रतिमान अवश्य स्थापित किया और आवश्यकता वैसे ही स्कूलों के केन्द्रीय एवं राज्यीय स्तर पर और अधिक निर्माण और विस्तार अथवा सभी स्कूलों को उनके समस्तरीय एवं साधनयुक्त बनाने की थी। चूँकि शिक्षा केन्द्रीय एवं राज्य सूची दोनों का विषय थी अतः प्रत्येक राज्य अपने संसाधनों को अपने अनुसार व्यय करता रहा और केन्द्र के शिक्षा बजट में भी बढ़ोत्तरी नहीं की जा सकी। ध्यान दिलाने की बात है कि प्रत्येक विकसित देश, पूँजीवादी आर्थिकी वाले देशों में भी, माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा बहुत कुछ समानस्तरीय और सर्वसुलभ रही है जबकि हमारे जैसे बड़ी जनसंख्या वाले देश में तो इसे सर्वसुलभ बनाने के लिए बड़े अभियान की ज़रूरत थी।

वैसे भी हमारे देश में मिश्रित शिक्षा प्रणाली चलती रही थी और सरकारी स्कूलों की व्यवस्था के प्रति सरकारों का रवैया लगातार उदासीन होते जाने और राजनीतिक भ्रष्टाचार के बढ़ते जाने ने उसे दोयम बनाना शुरू कर दिया। याद दिला दें 2015 में इलाहाबाद हाईकोर्ट के जस्टिस सुधीर अग्रवाल ने अपनी एकल बेंच से सरकारी स्कूलों की स्थिति के सुधार के लिए अपने ऐतिहासिक निर्णय में कहा था कि वह तभी सुधर सकते हैं जब सरकारी खजाने से तनख्वाह लेने वाले राज्य कर्मचारी, मंत्री या किसी प्रकार की कमाई करने वाले ठिकेदार आदि अनिवार्यतः अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजने के लिए बाध्य हों। लेकिन तत्कालीन प्रदेश सरकार उसके विरुद्ध डबल बेंच में अपील के लिए गई और अन्ततः इतना बड़ा फैसला सरकारों के खुद अपने स्वार्थों के कारण निष्प्रयोज्य होकर रह गया। वास्तविकता यह है कि निजी क्षेत्र के शिक्षण संस्थान स्वयं सरकारों में रहे इन दलों के संरक्षण में ही फलते फूलते रहे है। जबकि स्थानीय स्तर पर सरकारी स्कूलों आदि का प्रबन्धन विकसित देशों की तरह ग्राम पंचायतों या लोकतांत्रिक स्थानीय समितियों/म्युनिस्पल बोर्ड आदि के हाथ में न होकर भ्रष्ट सरकारी तंत्र के ही अधीन बने रहने के कारण लगातार दुर्गति का भागी बना। इसके परिणामस्वरूप सजे धजे निजी स्कूलों का बड़ा व्यापार शुरू हुआ और अच्छी शिक्षा आम आदमी की पहुंच से बाहर होती गई। व्यापारिक क्षेत्र में उदारीकरण और निजीकरण के नए दौर में तो शिक्षा खुले तौर पर व्यापार का विषय बन गई। इसके साथ ही विभिन्न लाभप्रद क्षेत्रों में प्रवेश के लिए मंहगे कोचिंग संस्थानों की बाढ़ आ गई। स्कूलों में स्तरीय शिक्षा न दिला पाने के कारण आम आदमी भी अपने बच्चों को, दोयम दर्जे के ही सही, कोचिंग सेंटरों पर भेजने की कवायद करने लगा और बड़ी संख्या में कमजोर तबके शिक्षा से पूरी तरह बाहर या वंचित होने लगे।

मतलब साफ़ है जहाँ शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त सरकारी भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने, उसे अनावश्यक सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर स्थानीय स्तर पर स्थानीय समितियों को उसके प्रबन्धन आदि से जोड़ने और सरकारों द्वारा उन्हें उचित अनुदान उपलब्ध कराने की ज़रूरत थी, उसके उल्टे इन सभी बातों को अव्यावहारिक मानते हुए सरकारी स्कूलों को ही बेकार बना दिया गया। सच तो यह है कि पीपीपी का मतलब आम जनता या स्थानीय जन समुदायों की भागीदारी न होकर किसी शिक्षा माफिया या कंपनियों के साथ सरकार की सांठ गांठ ही था। यही शिक्षा को एक बड़े व्यवसाय का रूप देने का भी आधार बन गया।

और अब हम कहाँ पहुंचे?

ऐसे में हम आज नई शिक्षा नीति के एक ऐसे मकड़जाल में फंसा दिए गए हैं जिसका उद्देश्य ही शिक्षा को व्यापार और कम्पनियों के लिए खोलना, बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करना, सस्ते मजदूर उपलब्ध

कराना और सीमित रूप से तकनीकी और प्रबन्धकीय प्रशिक्षण प्राप्त किए ऐसे युवाओं को तैयार करना है जिन्हें बड़ी बड़ी तनख्वाहें देकर अपने उपयोग में लेना और उन्हें शेष बहुजन समाज और उसके शिल्प से पूरी तरह काट देना है। इस मामले में एक मजाक यह है कि इधर व्यापारिक कम्पनियों ने देश की मिट्टी से जुड़े अनेक प्रकार के ज्ञान की भी एक नई व्यापारिक पैकेजिंग शुरू कर दी है और उसके प्रचार प्रसार/मार्केटिंग में नए प्रबन्धकीय ज्ञान से युक्त उन व्हाइट कॉलर युवाओं को लगा दिया है जिनका उससे जुड़े जमीनी समूह से दूर का भी रिश्ता बचा नहीं होता है।

दूसरी ओर इस नई शिक्षा नीति का अघोषित उद्येश्य हमारे देश में बहुजन समाज को रूढ़िवादी और अंधविश्वासी परंपराओं से जोड़े रखना है जो तर्क और विज्ञान की हमारी महान पुरानी और नई चेतना से पूरी तरह दूर रखा जा सके, और जो कोई प्रश्न न करता हो! नई शिक्षा नीति को बारीकी से पढ़ने पर यह दो बातें साफ़ समझ आ जाएंगी।

कहाॅ तो शिक्षा को एक एक बच्चे और देश के एक एक कोने तक पहुंचाना था और सरकारों से सबके लिए समानस्तरीय स्कूलों की व्यवस्था की अपेक्षा थी। उल्टे स्कूलों को ही बन्द किया जाना शुरू हो गया और बच्चों की शिक्षा को निजी क्षेत्र के घटिया या अच्छे स्कूलों के भरोसे छोडा जाने लगा जिसमें कमजोर तबके के बच्चे तो बिलकुल ही जाने से रहे। नई शिक्षा नीति में सबके लिए सरकारी स्तर पर समान और सर्वसुलभ स्कूली शिक्षा की व्यवस्था के बजाय समानान्तर रूप से चलती रही सरकारी और निजी स्कूलों की इस मिश्रित शिक्षा प्रणाली में ही निजी स्कूलों को प्रकटतः तरजीह दी जाती दिखाई दे रही है। सरकारी स्कूलों के ग्राम स्तर तक और विस्तार या पड़ोसी स्कूल की व्यवस्था से सरकारों ने किनारा करना शुरू कर दिया है और पीपीपी या मर्जर आदि के बहाने सभी राज्यों में हजारों सरकारी स्कूल बन्द किए जाने लगे हैं। हास्यास्पद तर्क यह है कि स्कूलों में व्यवस्था की दृष्टि से बच्चों की संख्या बहुत कम है! लगातार बढ़ती जनसंख्या के मद्देनजर अगर ग्रामों में बच्चे स्कूल न जाते हों अथवा उनके माता पिता/अभिभावक उन्हें इन सरकारी स्कूलों में न पढ़ाना चाहते हों और जैसे तैसे अच्छे निजी स्कूलों के नाम पर कहीं दूर भेजना चाहते हों तो यह किसकी कमी मानी जाएगी! अगर निकट ही अच्छा/स्तरीय सरकारी स्कूल उपलब्ध हो तो कौन अभिभावक ऐसा करना चाहेगा। विकसित देशों में निकट ही स्तरीय स्कूल उपलब्ध होने एवं उनमें जाने की अनिवार्यता होने के कारण स्वयं अभिभावक अपने बच्चों को वहीं भेजना बेहतर समझते हैं।

इसके अतिरिक्त स्कूली पाठ्यक्रमों में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की समानान्तर व्यवस्था और मेरिट/विशेष योग्यता (परख) के नाम पर बहुजन समाज के अधिकांश बच्चों को ज्ञान के विषयों से हटाने और उन्हें उनके व्यावसायिक प्रशिक्षण तक सीमित करने की एक अन्य बड़ी साजिश भी इसमें शामिल है ताकि उच्च ज्ञान और तकनीकि के विषय उच्च वर्गों के बच्चों के लिए सुरक्षित रखे जा सकें। इस नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत् सामान्य ज्ञान के पाठ्यक्रमों से सांप्रदायिक पूर्वाग्रह स्वरूप इतिहास के अनेक प्रसंगों को हटाया जाना, आजादी की लड़ाई और सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलनों को हासिए पर डाला जाना और परंपरावादी ब्राह्मणीय संस्कृति और उसकी भाषा संस्कृत के आरोपण द्वारा देश के ऐसे भावी नागरिक के निर्माण की संकल्पना है जो सोच और जानकारी में दकियानूसी और दुराग्रही हो, किसी एकरंगी समाज का स्वप्न पाले हो और भारत जैसे विविधता में एकता का विरोधी हो। इसी उद्येश्य से स्कूली स्तर पर ऐसे अनौपचारिक शिक्षकों प्रशिक्षकों को भी नियुक्त करने की योजना है जिनकी शैक्षिक योग्यता न देखते हुए उनकी सामाजिक व्यावसायिक गुणवत्ता को ध्यान में लिया जाए। स्वाभाविक है यह सब सत्ता की मंशा के अनुरूप पिछले दरवाजे से ऐसे व्यक्तियों को स्कूली शिक्षा व्यवस्था में घुसाना है जो सत्तारूढ़ दल की सामाजिक-सांस्कृतिक नीति के प्रचार प्रसार में उपयोगी हो सकें।

उच्च शिक्षा में विश्वविद्यालयों और उच्च संस्थानों में शैक्षिक एवं प्रबंधकीय स्वायत्तता का मामला आम लोग बहुत कम ही समझते होंगे। वस्तुतः इसका अर्थ उच्च शिक्षा संस्थाओं द्वारा अपने पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता और वैशिष्ट्य के निर्धारण की स्वतंत्रता और उनके संचालन की व्यवस्था से था जिसके लिए विश्वविद्यालयों की शिक्षा परिषद और कार्यकारिणी और विभागों की अध्ययन समितियाँ होती थीं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अन्य केन्द्रीय समितियाँ और राज्य अपने को अनुदानों और छात्र छात्राओं को अनेक प्रकार की छात्रवृत्तियाँ उपलब्ध कराने तक ही सीमित रखते थे। अब

चूँकि केन्द्रीय स्तर पर ऐसी समितियों और परिषदों (उच्च शिक्षा आयोगः भ्म्ब्प् और उसके अन्तर्गत छभ्म्त्ब्ए छ। ब्ए भ्म्ळब्ए ळम्ब्) का निर्माण किया जा चुका है जो सभी कुछ निर्देशित करती होंगी अतः अब विश्वविद्यालयों को केवल उनके निर्देशों का अनुपालन मात्र करना होगा और छात्रवृत्तियों के आधार और स्वरूप में परिवर्तन कर उन्हें भी सीमित कर दिया जाएगा। उस पर तुर्रा यह भी है कि विश्वविद्यालयों और संस्थानों के ग्रेडेशन की नई पद्धति के द्वारा अनेक सरकारी विश्वविद्यालयों के मुकाबले निजी विश्वविद्यालयों और संस्थानों को अपना स्तर दिखाने और सरकारी अनुदान प्राप्त करने का अच्छा मौका होगा जबकि सरकारी सस्थाएँ विभिन्न कारणों से उपेक्षित होते हुए अनुदान विहीनता की स्थिति में आकर अन्ततः बन्द होती जाएंगी।

विश्वविद्यालयों में आचार्यों की नियुक्तियाँ और प्रोन्नतियों को भी अब यह केन्द्रीय समितियाँ ही निर्धारित करेंगी। जिसमें आरक्षण की व्यवस्था की कहीं कोई चर्चा नहीं है। स्थायी और सुरक्षित सेवाओं के बदले संविदात्मक व्यवस्थाएँ चलेंगी और वह भी बहुत कुछ अनिश्चित होंगी। विश्वविद्यालयों में शोध की दिशा और उसकी स्वीकृति भी इन केंन्द्रीय समितियों (राष्ट्रीय अनुसंधान फाउण्डेशन- छत्थ्) के अधीन होगी। मतलब साफ है कि स्वतंत्र एवं तर्क पर आधारित आलोचनात्मक शोधों को दरकिनार कर दिया जाएगा और सरकार की इच्छानुसार प्रतिक्रियावादी शोध विचारों को प्रोत्साहित किया जाएगा। वर्तमान में विश्वविद्यालयों में आयोजित हो रहे सेमिनारों, वर्कशाप तथा अन्य संगोष्ठियों में इसकी झलक साफ देखी जा सकती है जिन्हें केन्द्र की प्रतिगामी सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं पूँजीवादी व्यावसायिक योजनाओं को प्रोत्साहित करने और प्रगतिशील विचारों को दबाने के उद्येश्य से ही अनुदानित किया जा रहा है।

हास्यास्पद यह भी है कि यह सब बड़ी बड़ी लफ्फाजियों के साथ शिक्षा में गुणवत्ता और योग्यता के विकास के नाम पर ही हो रहा है। बहुसंख्यक समुदाय के बच्चों को प्रारम्भिक स्तर पर ही शिक्षण प्रशिक्षण के माध्यम से छोटी छोटी सेवाओं और शिल्पों में ढकेलने और विशेष वर्ग के लिए उच्च शैक्षिक एवं तकनीकि ज्ञान उपलब्ध कराते रहना इसकी स्वाभाविक नियति है। जबकि कोचिंग संस्थानों तथा निजी स्कूलों पर लगाम लगाने या उन्हें समाप्त करते हुए समानस्तरीय सरकारी स्कूलों के निर्माण और विस्तार की कोई बात इसमें नहीं कही गई है। ऐसे में माध्यमिक स्तर तक सबको अनिवार्यतः सभी विषयों का आधारभूत ज्ञान देने और उन्हें एक सम्मानजनक जीवन पद्धति के लिए तैयार करने और अपनी इच्छा और योग्यतानुसार उच्च शिक्षा का क्षेत्र चुनने की स्वतंत्रता लगभग बाधित ही होनी है। जबकि नई शिक्षा नीति में नारा शिक्षा को बन्धनों से मुक्त कर विद्यार्थियों को अपनी योग्यता एवं इच्छानुसार अपने विकास के क्षेत्र चुनने का ही है! कहां तो शिक्षा को सरकारी तंत्र से मुक्त करने की बात थी उल्टे उसे पूरी तरह सरकारी केन्द्रीय समितियों के नियंत्रण में डाल दिया गया। सभी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में दाखिले के लिए भी एक केन्द्रीकृत परीक्षा प्रणाली की व्यवस्था (छज्।) कर दी गई। जबकि चिकित्सा और तकनीकि संस्थानों में प्रवेश के लिए केन्द्रीकृत परीक्षा प्रणालियाँ तो पहले ही लागू की जा चुकी हैं। मजेदार बात यह भी है कि इस नई शिक्षा नीति को पूरे ताम झांम के साथ हमारे संविधान में दी गई व्यवस्थाओं को पूरी तरह अनदेखा करते हुए लागू भी कर दिया गया है, वह भी मई दिवस के दिन प्रधानमंत्री मोदी के एक लच्छेदार उद्बोधन के साथ।

हमें क्या चाहिए?

शिक्षा पूरी तरह सरकार/सरकारों की जिम्मेदारी हैं। प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षण संस्थानों तक सरकार को ही उनका व्यय वहन करना चाहिए और इसके लिए पैसे की कमी का बहाना बिलकुल नहीं चल सकता जो अनेक अध्ययनों एवं तपस मजुमदार कमिटी की रिपोर्ट से साफ हो चुका है। पीपीपी अथवा अन्य किसी प्रकार से इसकी जिम्मेदारी निजी क्षेत्रों से साझा करना राष्ट्रीय अपराध समझा जाना चाहिए।

शिक्षा को व्यवसायियों और कंपनियों के हवाले करना जनद्रोह/जनविरोधी माना जाना चाहिए।

माध्यमिक स्तर तक केन्द्रीय एवं नवोदय विद्यालयों के समस्तरीय पड़ोसी स्कूलों की व्यवस्था हो।

केजी से पीजी तक की शिक्षा मुफ्त मिलनी चाहिए और इसके लिए विद्यार्थियों को अपनी प्रवेश योग्यता प्रमाणित करने के लिए असीमित मौके दिए जाने चाहिएं।

शिक्षा का माध्यम हर स्तर पर मातृभाषा ही होना चाहिए।

माध्यमिक स्तर तक सभी विद्यार्थियों को सामान्य ज्ञान और मूलभूत विषयों समेत पूर्ण औपचारिक शिक्षा

मिलनी चाहिए।

पाठ्यक्रमों में बिना किसी पूर्वाग्रह के विषयों के सम्यक ज्ञान और प्रगतिशील सोच का सम्प्रेषण होना चाहिए।

व्यावसायिक प्रशिक्षण के नाम पर ज्ञान के मूल विषयों से विरत् करने की साजिश बन्द हो। सभी को मूलभूत विषयों का ज्ञान होना अनिवार्य हो, तत्पश्चात् ही अपनी रुचि और योग्यता के व्यावसायिक विषयों या क्षेत्र का चुनाव विद्यार्थी करना चाहे अथवा ज्ञान के किसी विषय में उच्च शिक्षा ग्रहण करना चाहे या शोध की ओर उन्मुख हो।

विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता पुनर्स्थापित हो और वह अपने यहाँ विशेष पाठ्यक्रम निर्धारित करने, शोध का स्तर एवं दिशा तय करने एवं उसके अनुसार शिक्षकों की नियुक्तियाँ करने के लिए स्वतंत्र हों। किसी पाठ्यक्रम के अंश विशेष अथवा कैपस्यूल कोर्सेज के निमित्त अल्पकाल के लिए नियुक्त किसी शिक्षक या विशेषज्ञ को छोड़कर शिक्षकों की सभी नियुक्तियाँ स्थाई रहें और उन्हें नियमानुसार प्रोन्नति भी मिले।

स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में मानक शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात के अनुसार स्थायी शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में केन्द्रीकृत प्रवेश परीक्षा प्रणाली समाप्त की जाए।

विश्वविद्यालयों के ग्रेडेशन की गलत पद्धति समाप्त हो और उसके बहाने किसी विश्वविद्यालय के अनुदान को बढ़ाना या कम करना बिलकुल बन्द हो। गुणवत्ता की परख के लिए अनेक मानक और माध्यम हो सकते हैं जिनके द्वारा उन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।

उपर्युक्त व्यवस्थाएँ स्थापित होने तक शिक्षा में आरक्षण की पद्धति प्रभावी रूप से लागू रखी जाए।

आन्दोलन :

पुराना नारा था- चपरासी का बच्चा हो या राष्ट्रपति की हो संतान! हो सबकी शिक्षा एक समान!!

2008 से ही शिक्षा की दशा दिशा पर प्रश्न उठाते हुए अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच का गठन किया गया। अनेक सम्मेलनों और दिल्ली में राष्ट्रीय स्तर पर बहुत बड़ी हुंकार रैली और अन्य प्रादेशिक रैलियों के बावजूद सरकारी तंत्र इसकी उपेक्षा ही करता रहा है। नई शिक्षा नीति पर सवाल उठाते हुए विद्वानों, शिक्षाविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि के द्वारा अनेक लेख, पर्चे एवं पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जाती रही हैं। अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच द्वारा नई शिक्षा नीति के पूरे मसविदे और उसकी आलोचना से युक्त एक पुस्तिका भी प्रकाशित की गई और अनेक गोष्ठियों संगोष्ठियों में उसका वितरण और उस पर चर्चा की जाती रही है।

सरकारी स्कूलों के बन्द किए जाने और उनके मर्जर के खिलाफ़ महाराष्ट्र, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में विशेष आन्दोलन चले। तमिलनाडु में नीट परीक्षा की अव्यावहारिकता पर बड़ा आन्दोलन चला जिससे वहाँ के सरकारी स्कूलों से पढ़े छात्रों को 10 प्रतिशत की विशेष सुविधा प्राप्त हो सकी। ध्यान यह भी दिलाना चाहेंगे कि इन राज्यों में शिक्षा आन्दोलन का नेतृत्व अधिकांशतः दलित शिक्षक छात्र संगठनों ने किया। उत्तर प्रदेश में भी सरकारी स्कूलों को किसी न किसी बहाने कम या समाप्त करने का सिलसिला काफी पहले शुरू हो चुका था। अब खुले तौर पर 27 हजार स्कूलों के बन्द करने का अभियान शुरू हो चुका है जिसमें से 5 हजार पहले ही बन्द किए जा चुके हैं। क्या हम अब भी नहीं जागेगें!

पत्रिका नहीं, वैचारिक आन्दोलन

सामयिक वार्ता

पढ़ें, पढ़ाएँ, ग्राहक बनाएँ, मित्रों को उपहार दें

समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ़ सरकारी फतवा-हमारे सवाल

महेश विक्रम

मौजूदा वक्त में देश की सत्ता पर काबिज़ दल कोसमाजवाद और पंथनिरपेक्षता/धर्मनिरपेक्षता के विचार और शब्दों से बुनियादी तकलीफ़ रही है। जबकि यह विचार हमारे संविधान की मूल आत्मा हैं। इन्हें खुले तौर पर संविधान के प्रीएम्बल में 1970 के दशक में इस नजरिये से शामिल किया गया ताकि हमें अपने राष्ट्र की दशा और दिशा के बारे में कोई शक बना न रहे। काफ़ी कुर्बानियों और जद्दोजहद के बादहमें औपनिवेशिक शासन से आजादी मिली थी। अंग्रेजों ने हमारी आर्थिक ताकत कुचल दी थी। हम लुटे पिटे थे। बंटवारे के बाद भी हमारी आबादी 35 करोड़ थी। ऐतिहासिक विरासत के रूप में सदियों से हमारा समाजअसंख्य छोटी बड़ी जातियों, छुआछूत, सामाजिक ऊंच नीच, भेदभाव और लिंगभेद का शिकार रहा था तथाअनेक सम्प्रदायोंऔर धार्मिक फिरकों में बंटा रहा था। आजादी की लड़ाई के दौरान ही हमने एक ऐसे हिन्दुस्तानके निर्माण का सपना देखा था जिसमें हम अपनी इन कमजोरियोंसे जल्द से जल्द निजात पा सकें और परस्पर सद्भाव और सहयोग के बल पर एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण कर सकेंजिसे फिर किसी भीतरी या बाहरी गुलामी का सामना न करना पड़े।

आजादी के साथ हमने एक ऐसे गणतंत्र की स्थापना की जिसमें मनुष्यों के बीच किसी भी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक, लैंगिक, क्षेत्रीय और भाषायी भेदभाव को समाप्त किया जा सके। वाणी, लेखन, विचार की स्वतंत्रता और संपत्ति पर अधिकार लोगों के फंडामेंटल राइट्स- मौलिक अधिकार माने गए। हमारा प्रयास था कि ऐतिहासिक रूप से कमजोर रही जातियों, दलितों को ऊपर उठाने के लिए आरक्षण या विशेष अवसर प्रदान करने जैसे कुछ सकारात्मक उपक्रम किए जा सकें और अस्पृश्यता को पूरी तरह समाप्त किया जा सके। लोगों को व्यक्तिगत उद्यम की स्वतंत्रता हो और वह एक सीमा तक अपनी संपत्ति का निर्माण व उपभोग करने के अधिकारी रहें लेकिन देश की प्राकृतिक और मानव निर्मित सुविधाओं को इस प्रकार संरक्षित एवं विकसित किया जा सके कि प्रत्येक नागरिक को उसका लाभ मिल सके और वह कुछ लोगों की व्यक्तिगत संपत्ति न रहे और बने। कोई भी नागरिक शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित न रहे और रोटी कपड़ा मकान जैसी आधारभूत सुविधाएं सभी को उपलब्ध हों। परन्तु ऐसी बहुत सी बातें जो समाजवाद की दिशा में देश को आगे ले जातीं वह मौलिक अधिकारों का हिस्सा न होकर नीति निदेशक सिद्धान्तों और राज्य सूचियों में डाली गयीं।

लेकिन मौजूदा सत्तारूढ़ दल अपनी पैदाईश से ही एक वहम और झूठे फलसफे से ग्रस्त रहा है। उसके लिए मुसलमानों की देश में उपस्थिति के पहले का भारत अपने स्वर्णयुग में था, सभी लोग उत्कृष्ट और धार्मिक आचरण करते थे, परस्पर प्रेम से रहते थे और वर्ण-जाति व्यवस्था के अनुसार बड़े छोटे का ध्यान रखते थे, देश में दूध की नदियाँ बहती थीं आदि आदि। इनकी दृष्टि में बर्बर मुसलमान सुल्तानों ने ही हमें गुलाम बनाया, हमारे धर्म को नष्ट किया, हमारे मन्दिरों और मूर्तियों को ध्वस्त किया। अंग्रेज तो बेचारे फिर भी बाद में आए, वह भी इतने बुरे नहीं थे! इसलिएदेश को मुसलमानों के पहले के अपने पुराने दिनों में लौट जाना चाहिए, पुराने भाईचारे वाले एकरंगी समाज को फिर से स्थापित करना चाहिए, ब्राह्मण ऋषियों की वाणी से युक्त धर्मशास्त्रों के निर्देशों का पालन करना चाहिए आदि आदि! तभी हमारा देश तरक्की करेगा और असल में (वैसे तो हम मानते ही हैं) विश्वगुरु बन पाएगा। इसी आग्रह के साथ हमें समाजवाद जैसे नारों में भी नहीं फंसना चाहिए। यह बहुत ही खतरनाक नारा है जो पश्चिम से आया है। यह हमारी सामाजिक धार्मिक परंपरा (वर्णानुसार छोटे बड़े का व्यवहार) को नाहक चुनौती देता रहता है, सामाजिक बराबरी और सबको ऊपर उठाने की बात करता है। भला सब कैसे बराबर हो सकते हैं, ईश्वर ने जिन्हें श्रेष्ठ बनाया है, जो जन्म से ही गुणी और प्रतिभावान हैं, परिवार से ही सभ्य और सुसंस्कृत हैं, वही तो उच्च पदासीन होने योग्य हैं! यह समाजवाद तो हमारे श्रेष्ठ जनों और संपन्न लोगों की संस्कृति पर आधारित शक्ति और संपदा के

लिए संकट पैदा करता है, आर्थिक स्रोतों और साधनों संसाधनों को सबके बीच बांटने की बात करता है। भला इससे देश का आर्थिक विकास कैसे हो सकता है! हाँलाकिराष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भले ही सामाजिक आरक्षण कीव्यवस्था को अभी राजनीतिकस्वार्थ के कारण सीधी चुनौती न देता हो परन्तु वह इसे एक सामाजिक मूल्य के रूप में नकारता ही है। पुरानी जनसंघ के जनता पार्टीमें विलय के बाद उसकी टूट से बनी भारतीय जनता पार्टी ने अपनेमैनिफेस्टो में राष्ट्र के संविधान में आस्थाव्यक्त करते हुएदेश की सामाजिक एकता, सर्वधर्मसमभाव औरबिना नाम लिए समाजवादी विकास को अपना ध्येय घोषितकिया था, लेकिन वह सब इनका दिखावटीमुखौटा ही रहा है जो सत्ता पर काबिज होते ही उतार फेंका गया।

सत्तारूढ़ दल के छोटे बड़े नेताओं की ओर से समाजवाद और पंथनिरपेक्षता/धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध दिए जा रहे वक्तव्य इसी विचार से जुड़े एक सुनियोजित अभियान का हिस्सा हैं जिसके प्रतिवाद में निम्नलिखित सवालों पर गौर किया जाना ज़रूरी है-

1. यदि हम समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के महान आधुनिक मानवीय मूल्यों को पश्चिम से आयाहुआ समझेंतब क्याराष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के गुरू गोलवलकर की एकरंगी राष्ट्र की संकल्पना हिटलर के नाजीवाद और मुसोलिनी के फासीवाद से उपजित एक संकीर्ण पश्चिमी विचार नहीं है? जबकि प्राचीनतम्काल से हमारी संस्कृति सभी धर्मों और सम्प्रदायों का सम्मान करने और परस्पर वाद-विवाद के साथ सही दिशा की तलाश करने की रही है। 'वसुधेव कुटुम्बकम्' की महान संकल्पना से प्रेरित हमारी संस्कृति में 'वादे वादे जायते तत्वबोधः' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्त निरामया' जैसे उत्कृष्ट विचार पल्लवित होते रहे हैं। विशेष राजनीतिक परिस्थितियों में यदि किसी शासक या शासकों ने अपने राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों और सामाजिक अहमन्यता से ग्रस्त होकर इसकी उपेक्षा की भी तो उसे समाज ने स्वीकार नहीं कियाअथवा फिर वह खण्ड खण्ड हो स्वयं ही अपने पतन का भागी बना। हमारा इतिहास इसका गवाह है कि सर्वधर्मसमभाव या उदार मानवीय चेतना के काल में ही हमारे देश ने वास्तविक विश्वगुरू का स्थान अर्जित किया है और दुनिया ने हमें सम्मान से देखा है। अन्यथा आज जिस विचार को सनातन कहकर हम अपने धर्म और संस्कृति की एक नितान्त धूर्तपूर्ण व्याख्या में लगे हैं वह हमारे सामन्तवादी काल के समाज की पतनोन्मुख प्रवृत्तियों के साथ उपजित एक पराजित संस्कृति ही है।

2. भारतीय संदर्भ में धर्म शब्द मनुष्यों के आध्यात्मिक उत्कर्ष, मानवीय गुणों और सामाजिक कर्तव्यों या अनुशासन और सांस्कृतिक आचरण के संदर्भ में प्रयुक्त होता रहा है। जिसे सभी मनुष्यों द्वारा स्वयं धारण किया जाना अपेक्षित है- 'धर्म ते इति धारयति'। वैदिक-ब्राह्मण परंपरा या शास्त्रों के निर्देशन से प्रतिबद्ध हिन्दू समाज की विडम्बना यह है कि उसमें समाज का केवल सैद्धान्तिक वर्गीकरण ही नहीं किया गया बल्कि उसे जन्मना आधार पर नस्लीय या स्थायी रूप से बड़े-छोटे, ऊँच-नीच में बांटे रखा, यहाँ तक कि एक बड़े समुदाय को अपृश्य बना छोड़ा जिसमें धार्मिक निर्देशक के रूप में ब्राह्मण सर्वोच्च तथा सत्ता, शक्ति और प्रभुता (स्वाभाविक रूप से राजनीतिक, सैनिक एवं आर्थिक प्रभुता) से युक्त समूह उसके संरक्षक बने रहे। प्रारम्भ से ही इस व्यवस्था के विरुद्ध प्रश्न भी उठाए जाते रहे परन्तु सत्ता पर नियंत्रण रखने में सफल रहे समूहों ने उसे बाध्यकारी बनाए रखा। अनेक संघातों और अनुभवों से बनी आधुनिक काल की मानवीय चेतना के साथ इस विडम्बना को एक बार फिर धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों के साथ ही राजनीतिक स्तर से भी हल करने के उपक्रम प्रारम्भ हुए। स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त और अद्वैत (सभी मनुष्य ब्रह्मयुक्त हैं) को उसके आधारभूत मानवीय दर्शन से जोड़ने के लिए एक बड़े आन्दोलन की अगुवाई की जिसने उन्हें विश्वगुरु की प्रतिष्ठा तो दी ही हमारे नवनिर्मित गणतंत्र के आधुनिक संविधान के निर्माण को भी दिशा दी।

3. इसी के साथ यह भी तय था कि कोई भी पंथ/धर्म या संस्कृति किसी पर बलात् नहीं लादी जा सकती। यह मनुष्यों के स्वेच्छया चुनाव का ही विषय है। इसमें भी एक संकट यह था कि ब्राह्मण/हिन्दू परंपरा के निर्वहन का अधिकार ही जन्मना था जबकि व्यवहारतः अन्य उपदेशित धार्मिक परंपराओं (जैन बौद्ध ईसाई इस्लाम सिक्ख जैसे) में भी किसी धर्म/सम्प्रदाय विशेष का जन्मना अनुपालन व्यवहारतः प्रचलित होने के बावजूद उनमें उस धर्म परंपरा को ग्रहण करने और त्यागने के विधान प्रचलित रहे। इस दृष्टि से किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को अपने प्रचार प्रसार की छूट होनी ही चाहिए थी जबतक कि उसके लिए लोगों के साथ किसी प्रकार के छल, धोखे, लोभ और जबरदस्ती का रास्ता न अपनाया गया हो!इस मामले में भी संकट स्वयं भारत में

प्रकट या विकसित हुए धार्मिक आन्दोलनों जैसे जैन बौद्ध सिक्ख धर्मों को लेकर कम था, भारत से बाहर जन्मी धार्मिक परम्पराओं यथा ईसाई और विशेषतः इस्लाम की परम्परा को लेकर ही अधिक रहा, जो आज की फासीवादी राजनीतिक संस्कृति से प्रेरित और लाभान्वित सत्तारूढ़ दल द्वारा प्रकट कटुता और वैमनस्य की स्थिति तक पहुंचा दिया गया।

4. मुसलमान दुश्मन कैसे है?

मुसलमान को दुश्मन मानने वालों को हमारे देश में, जब हम आधुनिक अर्थ में कोई राष्ट्र नहीं बने थे, इस बात का दुख है कि हमारे देश पर इस्लामी हमलावरों ने घुसकर 700 साल तक शासन किया, हमें लूटा-पीटा, हमारे धर्म और संस्कृति को अपमानित किया!और अब जब इन्होंने अपने लिए पूरा एक मुल्क ले लिया है तो हिन्दुस्तान के सभी मुसलमानों को या तो पाकिस्तान या बंगलादेश चले जाना चाहिए या यहाँ इनके नागरिक अधिकार छीन लिए जाने चाहिएं आदि!यह सारी बातें न केवल भ्रांतिपूर्ण पूर्वाग्रहों और इतिहास की आंशिक या नाजानकारी और समझ से जुड़ी हैं बल्कि कई मामलों में विरोधाभासी भी हैं। यह नहीं समझते की गणतंत्रों और आधुनिक राष्टीड्रय राज्यों के निर्माण के पहले सभी राज्यों के शासकों की अपनी स्वतंत्र सत्ताएं थीं और हर शासक अपने शासित राज्य की सीमाओं की प्रतिरक्षा अथवा उसके विस्तार की ही चिन्ता करता रहा। जिसका जब बस चला देश के भीतरही या बाहर से दूसरों पर हमले करता रहा। भारत का विस्तृत उपजाऊ मैदानी क्षेत्र और यहाँ की संपदा सबको आकर्षित करती रही जबकि मध्य एशिया में अनेक कबीले और समूहएक दूसरे को ठेलते हुए प्राचीन काल से ही भारत की ओर बढ़ते और घुसते रहे। यह ज़रूर है कि बाख्रियाई यवन, शक, पहलव, हूण आदि यह प्रारम्भिक हमलावर अपनी संस्कृतियों की लघुता अथवा अपने मूल देश से बहुत दूर हो चुके होने के कारण अपने अपने काल में भारत में प्रभावी रूप से बनी रही बौद्ध या ब्राह्मण/हिन्दू परम्पराओं में ही समाहृत होते गए। इसलिए उनकी स्वतंत्र पहचान विलुप्त होती रही।

जबकि ईसाई एवं इस्लामी समुदाय अपने अपने क्षेत्र के बड़े धार्मिक आन्दोलनों की देन थे जिनके ध्वजवाहक या संरक्षक भी पर्याप्त शक्तिशाली साबित हुए। फिर यह ध्यान दिलाना भी ज़रूरी है कि भारत सेईसाई और मुसलमान दोनों का ही प्रारम्भिक परिचय एक शान्तिपूर्ण धर्मप्रचारकों के रूप में ही हुआ। जिसमें ईसाई संत थॉमस का पहली शताब्दी ई.सन् में ही तमिलनाडु प्रदेश में आगमनऔर सातवींसदी में ही इस्लामी अरबों का कोंकण या कालीकट के राजा से प्रार्थनापूर्वक मस्जिद का निर्माण करवाना ऐतिहासिक तथ्य है। इसके बाद भी खलीफाओं के नेतृत्व में हुए इस्लाम के प्रचार के दौर में भारत में मुसलमान शासकों की सत्ता सिन्ध के आगे नहीं बढ़ सकी जहाँ बौद्धों और ब्राह्मणों के बीच चले राजनीतिक सांस्कृतिक संघर्ष की अलग कहानी है। लगभग अगली दो शताब्दियों से अधिक भारत के स्थानीय शासकों ने अरबी और तुर्क इस्लामी हमलावरों का सफल प्रतिरोध जारी रखा लेकिन उसके पीछे प्रमुखतः उनके द्वारा अपनी राज्य सीमाओं की प्रतिरक्षा की ही भावना रही। 10वीं सदी के बड़े मुसलमान हमलावर गज़नी के महमूद ने भारतपर कुल 17 हमले किए और उसका एकमात्र उद्येश्य यहाँ की संपदा को लूटना था जो सामन्तवादी काल में विशेष रूप से मंदिरों में जमा होती रही थी। भारत में मुस्लिम शासकों की उपस्थिति वास्तव में मोहम्मद गोरी के सफल अभियानों के बाद 1206 में कुतुबुद्दीन ऐबक के दिल्ली पर काबिज़ होने से शुरू हुयी जिसके नियंत्रण में गंगा के दोआब से लेकर बंगाल तक का क्षेत्र आ गया था। उसके बाद भी केवल अलाउद्दीन खलजी, मुहम्मद बिन तुगलक और फिर मुगलों के ही काल में दक्षिण के कम या अधिक क्षेत्र तथाकथित इस्लामी शासकों के अधीन हो सके जिसे कुल जमा 250 वर्षों का काल कहा जा सकता है। इसमें भी 12वीं से 15वीं सदी तक कर्नाटक में महान विजयनगर हिन्दू साम्राज्य ही बना रहा था और मुस्लिम बदशाहों के अधीन रहे बड़ी संख्या में अनेक हिन्दू राजा और राज्य अपनी धर्म संस्कृति का अनुपालन करने के लिए स्वतंत्र ही थे। औरगंजेब का साम्राज्य ही इस काल में कन्याकुमारी तक फैला एक समूचे हिन्दुस्तान का साम्राज्य था और उसके मनसबदारों में राजपूतों की बड़ी संख्या थी, अकबर के काल से कहीं ज्यादा। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद तो वैसे भी केन्द्रीय मुस्लिम सत्ता कमजोर हो गयी और पूरा हिन्दुस्तान अनेक छोटी बड़ी हिन्दू मुस्लिम रियासतों में विघटित होता गया। इसी दौर में सात समुन्दर पार कर एक ऐसे विदेशी हमारे देश में आ धमके जिन्होंने बंगाल और अवध के नवाबों, मैसूर के टीपू सुल्तान, पेशवाओं और मराठों, हैदराबाद के निज़ाम, और सभी राजपूत रजवाड़ों को पराभूत कर वास्तव में हमें गुलाम बनाया और यहाँ एक औपनिवेशिक सत्ता स्थापित की।

उनके पहले रहे मुस्लिम शासकों का एक बहुत

बड़ा योगदान पश्चिमोत्तर सीमान्त पर आ धमके मंगोलों से देश की रक्षा करना था जिसमें बलबन और अलाउद्दीन जैसे शासकों की बड़ी भूमिका रही, अन्यथा बर्बर मंगोलो के सामने हमारी कोई भी संस्कृति बची रह पाती इसमें संदेह ही हैं। भारत में कतिपय मुस्लिम शासकों या उनके गवर्नरों/सिपहसलारों के अपने अभियानों को प्रभावी बनाने और स्थानीय तबकों पर अपना दबदबा कायम करने की नियत से किए गए यदा कदा क्रूरतापूर्ण व्यवहार और उनकी विंध्वसक कार्रवाहियों को यदि राजनीतिक इतिहास की सहज नियति माना जा सके तो ज्यादातर मामलों में उन्होंने हमारी परंपराओं की रक्षा ही नहीं की बल्कि उसमें अनेक नए आयाम जोड़े। तैमुर लंग, नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली के आये गए हमले और उनमें उनके द्वारा प्रदर्शित बर्बरता वास्तव में उस समय यहाँ दिल्ली में शासन कर रहे मुसलमान शासकों के ही विरुद्ध थी जिसमें वहाँ बसे हुए हिन्दुओं से ज़्यादा मुसलमानों की जान माल की क्षति हुयी और इन आकस्मिक हमलों और उससे जुड़ी बर्बरता को हिन्दू मुसलमान के नजरिए से देखना तो सरासर बेवकूफी कही जाएगी। जबकि हमें यह भीजाने रहना ज़रूरी है कि हिन्दुओं के अनेक मंदिरों और मठों का निर्माण यहाँ मुसलमान शासकों के काल में लगातार चलता रहा। हिन्दुस्तानी संगीत, वेशभूषा और भद्रजनों के अनेक व्यवहार उनकी सत्ता का स्वाभाविक उत्पाद था, और फिर उनके काल की सबसे बड़ी देन थी हिन्दुस्तानी समाज में एक नई चेतना पैदा करना- सूफी, सगुण और निर्गुण भक्ति आंदोलन। मुस्लिम शासकों ने न केवल भारत को अपना मुल्क माना, अलाउद्दीन ने तुर्की खली फत से अपना रिश्ता तोड़कर स्वयं की देसी मुसलमान की पहचान के साथ यहाँ का देसी सुल्तान होने का दावा किया और फिर महान मुगलों ने तो पूरे हिन्दुस्तान की एक स्वतंत्र राजनीतिक पहचान बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मुस्लिम शासकों ने यहाँ से मिलने वाली दौलत को यहीं इस्तेमाल किया और अनेक प्रकार के निर्माणों के साथ ही कई आर्थिक और सैनिक सुधार भी किए। इस दृष्टि से औरंगज़ेब सबसे खास था जिसने अपनी सल्तनत का एक भी पैसा अपने ऐशो आराम और शानो शौकत पर खर्च करनाहराम समझा। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि मुस्लिम शासकों द्वारा आम लोगों के जबरन धर्म परिवर्तन केप्रयास की कोई भी बात केवल अपवाद ही कहलाएगी। पूरे भारत में कारीगरों की बड़ी जमातें स्वेच्छयाइस्लाम को अपनाने के लिए इसलिए तैयार हुईं क्योंकि ब्राह्मणीय व्यवस्था में उनमें से अधिकांश की स्थिति अछूतों और बहिर्वर्ती समुदायों की थी। अकबर के काल में कारखानों की व्यवस्था में उन्हें अपने आर्थिक विकास के नए अवसर मिले और नया सामाजिक सम्मान भी।

5. हिन्दुस्तान का मुसलमान क्या मांगता है?

तब आज जब हम एक प्रगतिशील गणतंत्र का रूप ले चुके हैं और परस्पर सहअस्तित्व और सहयोग के साथ राष्ट्र के विकास में जुटे है तब अचानक यह मुसलमानों से नफरत की एक नई फ़िजा किसने और क्यों पैदा की!यह धूर्ततापूर्ण प्रचार किसने किया कि मुसलमानों ने हिन्दुओं पर पहले बहुत अत्याचार तो किया ही, आज भी मुसलमान गंदा है, गोमांस बेचता और खाता है, देश के बाहर से आए धर्म में आस्था रखता है और अपने बाहरी सहधर्मियों और हमारे दुश्मन पाकिस्तान से मिलकर देश के विरुद्ध षडयंत्र करता है, हिन्दू लड़कियों को लव जेहाद से बहकाता है, आतंकवाद फैलाता और आतंकवादियों को शरण देता है। अपने बच्चों को केवल मदरसों में पढ़ाता है, हठधर्मी और हमलावर होता है, सुधरना नहीं चाहता, बहुत बच्चे पैदा करता है अपनी आबादी बढ़ाता रहता है और अगर हिन्दू सचेत नहीं हुए तो जल्दी ही उसकी जनसंख्या हिन्दुओं से ज्यादा हो जाएगी और पाकिस्तान की तरह यहाँ भी हिन्दू अल्पमत में आ जाएंगेआदि आदि.....इस जैसी अनेक गलत बातें सुनियोजित और आक्रामक ढंग से उसके विरुद्ध प्रचारित की गई और की जा रही हैं। क्या हमने कभी गौर से देखना भी चाहा कि इनमें कितनी सच्चाई और कितना दुष्प्रचार छिपा है! इसके साथ ही ऐसे हिन्दू भी जो इन गलत बातों को नहीं मानते और तथ्यों के साथ तर्क करते हैं उन्हें भी मुसलमान और पाकिस्तानपरस्त मानकर नितान्त हास्यास्पद रूप से गद्दार की श्रेणी में रख दिया जाता है!

अब हम जरा एक जिम्मेदार नागरिक की तरह इसकी तफसील में जाएं तो गंगा यमुना का दोआबी मुसलमान यहाँ की हिन्दू परंपराओं के सम्मान में गोमांस से परहेज रखता है। जबकि इन हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही उसका सबसे ज्यादा विरोध नजर आता है। हम यह भी जानते हैं कि हमारा देश बड़ी मात्रा में गोमांस निर्यातकरताहै और यह बड़े निर्यातक अधिकांशतः हिन्दू और जैन व्यपारी ही हैं! मुसलमान के मदरसे मस्जिदें उनकी अपनी ही भूमि पर हैं और बनती हैं और सरकारी जमीन और धन से उनका कुछ भी लेना देना नहीं होता। यद्यपि इस तरह के निर्माणों के लिए बाहर के इस्लामी

मुल्कों से उन्हें यदा कदा स्वाभाविक मदद ज़रूर मिल जाती है जिस पर किसी को भी गुरेज़ क्यों होना चाहिए!

यह भी आरोप लगाया जाता है कि मदरसों में मजहबी शिक्षा के साथ ही जेहाद और आतंकवाद का पाठ पढ़ाया जाता है जो सरासर गलत तो है ही जबकि संस्कृत पाठशालाओं और रा.स्व.सं. और अन्य हिन्दू संस्थाओं द्वारा संचालित सरस्वती शिशु मंदिर जैसे स्कूलों में आज भी वर्णव्यवस्था और फिरकापरस्ती की शिक्षा धड़ल्ले से दी जाती है और अब तो राष्ट्रीय स्कूल पाठ्यक्रमों से भी देश के मुस्लिम शासकों का इतिहास हटाने और मुसलमानों का नामोनिशान मिटाने की घटिया सोच के साथ स्थानों और मार्गो के पुराने मुस्लिम नाम बदलने की मुहिम जोर शोर से चल रही है। कहा यह भी जाता है कि मुसलमान अपने बच्चों को आधुनिक शिक्षा नहीं देना चाहता इसीलिए वह पिछड़ा है। जबकि सच्चाई ठीक इसके उलट है। जो मुसलमान बच्चे आधुनिक शिक्षा लेकर अपनी काबलियत के बल पर सरकारी या गैर सरकारी रोजगार की तलाश करते हैं उन्हें नौकरी देने में परहेज बरता जाता है, उन्हें घुसपैठिया जैसा समझा जाता है। मौजूदा माहौल मे ंतो आधुनिक निजी स्कूलों तक में हिन्दू शिक्षकों और छात्रों द्वारा मुस्लिम छात्रों/सहपाठियों पर आपत्तिजनक टिप्पणियॉ की जाने की घटनाएॅ सुनने में आती हैं। ऐसे में अधिकांशतः उसे अपनी शिक्षा और नौकरी के लिए अपनी अल्पसंख्यक पहचान वाली संस्थाओं का ही रुख करना होता है। दूसरी ओर हमारे देश के मुसलमानों का बड़ा तबका स्वरोजगार और अपने हुनर एवं कारीगरी के बल पर ही जिन्दा रहता है और वह सरकारी कृपा का कम से कम मोहताज होता है। अगर मुसलमान अपने रोजगार के लिए खाड़ी देशों में जाता है तो वहां से भी सर्वाधिक विदेशी मुद्रा वह अपने देश में भेजता है जो हमारे विदेशी मुद्रा के भण्डार में वृद्धि का बहुत बड़ा स्रोत होता है। बहुसंख्यक गैरमुस्लिम अपनी कालोनियों, बस्तियों और घरों में उसे किराएदार रखने या मकान जमीन देने से भी परहेज करते हैं और वह मुस्लिम इलाकों में ही मकान रखने के लिए मजबूर होता है। मुसलमानों की आबादी बढ़ने का मामला तो और भी हास्यास्पद है जबकि आजादी के बाद के सालों में मुसलमानों की जन्मदर हिन्दुओं से कम ही रही है और इसमें यह भी पहलू जुड़ा है कि जन्मदर अधिकांशतः कमजोर तबकों में ही अधिक होती है चाहे वह मुस्लिम हो या गैर मुस्लिम। लव जेहाद का मामलातो एकदम ही बकवास और स्वयं में अपना ही अपमान करने जैसी बात है।

जहॉ तक किसी मुसलमान के माफिया, स्मगलर, भ्रष्टाचारी, देशद्रोही आदि होने के लेबल की बात है तो उसकी संख्या तो गैर मुस्लिमों में कई गुना ज़्यादा मिल जाएगी जो हमारे देश की कानून और न्याय व्यवस्था का मसला है हिन्दू मुसलमान का नहीं। निश्चित ही बंगलादेश बन जाने के बाद से पाकिस्तान हमसे सीधी लड़ाई में हार कर छद्म युद्ध के रूप में आतंकवादी घटनाओं में लिप्त रहा है और इससे वह हमारी जान माल का नुकसान तो करता ही है साथ ही वह बहुसंख्यक गैर मुस्लिम तबकों के बीच हमारी अपनी ही नासमझी से देश के मुसलमानों कोआतंकवादियों का हमदर्द होने का भ्रम फैलाने में भी सफल हुआ है। जिसका परिणाम हमारे देश में ही मुसलमानो को संदिग्ध मानकर तथाकथित हिन्दूवादी संघटनों ने उनपर हिंसक हमले तक शुरू कर दिए। पिछलेदस वर्षो से गोरक्षा के नाम पर मुसलमानों की हत्या, मॉब लिंचिंग और किसी न किसी बहाने उनकी मस्जिदों, मदरसों, मकबरों पर हमले और उनके व्यवसायों एवं धार्मिक गतिविधियों पर कई तरह के सरकारी प्रतिबन्ध की घटनाएँ आए दिन सुनने में आ रही हैं। जबकि उनके सापेक्ष हिन्दू धर्मिक जमावड़ों को विशेष सरकारी संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिलता साफ़ दिख रहा है। क्या देश के बंटवारे के पीछे जिन्ना का यह तर्क कि हमारे धर्मनिरपेक्ष/सर्वधर्मसमभाव वाले प्रजातांत्रिक देश में भी बहुसंख्यक हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों के साथ अत्याचार होगा यह सही साबित नहीं होगा!और फिर अगर हम पाकिस्तान और बंगलादेश सबको जीत भी लें तो क्या उन देशों की मुस्लिम आबादी को भी मिटा देंगे और फिर सब तरफ भगवा ही भगवा लहराएगा! यह सब सोचना भी मुंगेरीलाल के सपने जैसा ही तो है। अच्छा तो यही होता कि जैसा लोहिया सुझाव देते थे कि हम सभी सहोदर पड़ोसी अपने वैमनस्य मिटाकर एक महासंघ का निर्माण कर पाते, हमें अपने बीच की सीमाओं पर किसी सैनिक कवायद की कोई ज़रूरत नहीं होती और हम सबका प्रतिरक्षा बजट हमारे देशों की तरक्की में व्यय होता!

बँटवारे के समय की त्रासदी के दौर में भी जैसे अधिकांश मुसलमानों ने इस मुल्क में रहना कुबूल किया, इस देश की सहिष्णुता पर भरोसा किया और इसकी मिट्टी से अपना रिश्ता समझा उसे अनदेखा करना इस राष्ट्र की आत्मा को चोट पहुंचाना ही माना जाएगा। इस देश के मुसलमान के लिए यह देश उतना ही उसका है जितना देश के किसी अन्य धर्मावलम्बी का। सदियों से बनती बढ़ती यहाँ की संस्कृति तथा आर्थिक और

राजनीतिक बुनावट का वह ताना-बाना है। आजादी की लड़ाई में वह सबके साथ हमेशा हमकदम रहा है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1942 तक अपने हमवतन अन्य धर्मालम्बियों के साथ वह बढ़चढ़ कर लगातार कुर्बानियाँ देता आया है। चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह और सुभाष चन्द्र बोस की अभ्यर्थना का ढोंग करने वाले लोग उनके जांबाज मुसलमान साथियों, मुसलमानों के प्रति इन शहीदों के नजरिए और उनकी समाजवादी सोच और ज़ज्बेपर कभी कोई बात नहीं करना चाहते। यह मौजूदा सियासत की मक्कारी है कि हम मौलाना आजाद और ब्रिगेडियर उस्मान अलीजैसे लोगों के नाम नहीं लेते। अब्दुल हमीद और उन जैसे शहीद जाबाजोंको याद नहीं करते, और तो और कुछ बहुत घटिया सियासतदार एक जांबाज मुस्लिम महिला एयर कमांडर की राष्ट्रनिष्ठा पर भी सवाल उठाने से पीछे नहीं रहता जबकि देश के अनेक नामी गिरामी मुस्लिम खिलाड़ी भी यदि कभी कहीं अपने प्रदर्शन में चुक जाएँ तो उन्हें पाकिस्तानी या देशद्रोही बताने में एक क्षण भी नहीं लगाते। हमारे बहुप्रतिष्ठित राष्ट्रपति अब्दुल कलाम आजाद को भी हमारे भाई इसलिए अधिक महत्व दे पाए क्योंकि उनकी पहचान मिसाइल मैन की रही, ऐसी मिसाइल जिसका प्रयोग हमारे दुश्मन पाकिस्तान के विरुद्ध किया जा सकता है!मतलब साफ़ है मौजूदा सियासत के बदौलत किसी मुसलमान को अपनी देशभक्ति का प्रमाण देने के लिए मिसाइल मैन बनना पड़ेगा नहीं तो वह आतंकवादी ही माना जा सकता है!

6. समाजवाद पर प्रश्न क्यों?

आजादी प्राप्त होने के समय से सबके विकास या कमजोर तबकों में आत्मसम्मान पैदा करने और एक समतावादी समाज के स्वप्न के नाम पर जैसी भी मिश्रित अर्थव्यवस्था का निर्माण और संचालन का कम या अधिक प्रयास पिछली सरकारें करती रहीं उसके चलते सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक छोटे बड़े उद्यमों एवं संस्थानों का निर्माण एवं विकास हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र में स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों, अस्पतालों, तकनीकि संस्थानों आदि की स्थापना के साथ ही राष्ट्रीय एवं सार्वजनिक हित के मद्देनजर उत्पादन, व्यापार एवं वितरण से संबंधितकुछ क्षेत्रों के कतिपय उद्योगों और संस्थानों जैसे प्रतिरक्षा, आयल एवं गैस, पारमाणवीय ऊर्जा आदि को पूर्णतया सार्वजनिक नियंत्रण में ही रखा गया। नवरत्न और अनेक पीएसयू स्थापित हुए जो राष्ट्र की नाक माने गए। मगर राजनीतिक और आर्थिक भ्रष्टाचार, नेताओं और अफसरशाही द्वारा उपेक्षा और उनके गैर जिम्मेदराना व्यवहार और उनके निजी क्षेत्र से साठ गाँठ के चलते अनेक सार्वजनिक उद्यम, जो व्यावसायिक दृष्टि से पहले ही अलाभकारी माने गए थे और लोगों को रोजगार और सुरक्षा प्रदान करने के लिए बने थे, सरकारी नियत एवं इच्छाशक्ति के अभाव में उनमें सुधार का कोई ईमानदार प्रयास होता नहीं दिखा। परिणामस्वरूप वह अपनी प्रतिष्ठा खोते गए और इसका दोष उनकी कार्यप्रणाली एवं उनमें संलग्न कर्मचारियों के अराजक व्यवहार पर मढ़ा जाता रहा। देश का पूरा वातावरण उनके विरुद्ध बनता गया और अन्ततः समाजवाद की दिशा में जो भी थोड़े बहुत कदम उठाए जा सके थे उससे हाथ खींचा जाना शुरू हुआ और अब हमारा देश पूरी तरह नवपूँजीवादी शिंकजे में फंस चुका है।

7. 140 करोड़ की आबादी, जहाँ हमारी सरकार 85 करोड़ को मुफ्त राशन देकर जिन्दा रखने का दावा करती हो, क्या कोई भी पूंजीवादी व्यवस्था उसका समाधान देने की पहल कर सकती है! सार्वजनिक क्षेत्र को नष्ट करके क्या निजी क्षेत्र के उद्यमों में वैकल्पिक रोजगारों का निर्माण किया जा सकता है!ध्यान दिला दें कि स्वरोजगार के क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से जनता पार्टी के शासन काल में लगभग 1400 छोटे उद्योगों और व्यवसायों को कार्पोरेट कंपनियों से बचाने के लिए सुरक्षित किया गया था जिससे कम पूँजी वाला व्यक्ति भी अपने स्वयं के आर्थिक उद्यम कर सके। उसके लिए सुरक्षित यह सभी उद्योग और व्यवसाय धीरे धीरे कार्पोरेट के लिए खुलते गए और आज यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि 'स्टार्ट अप' आदि जैसे लुभावने नारों और प्रारम्भिक सरकारी पूँजीगत सहायता के बावजूद अधिकांश क्षेत्रों के यह बच्चे उद्यमी इसलिए बैठ गए क्योंकि उनके द्वारा निर्मित या बाजार में पहुंचायी (मार्केट की) जाने वाली छोटी से छोटी वस्तु भी या तो बड़ी पूँजी से युक्त बड़ी कार्पोरेट संचालित करती होती हैं अथवाव्यापार के उदारीकरण और वैश्वीकरण के इस दौर में हमारे देश के व्यापारिक दरवाजे अब बाहरियों के लिए ज्यादा खुले होने के कारण हमारे यहाँ कहीं सस्ते दाम में बाहर से आ जाती हैं जिसमें चीन से सस्ते में उपलब्ध होने वाली अनेक उपयोगी वस्तुओं से हम सभी अच्छी तरह परिचित हैं। क्या हमारा देश पूँजीवाद के 'ट्रिकल डाउन' सिद्धान्त की व्यावहारिक विफलता को अभी भी स्वीकार नही ंकर पाया है जबकि दुनिया पूर्ण आटोमाइजेशन रोबोटीकरण और आर्टिफिशियल

इंटेलिजेंस के युग में प्रविष्ट हो चुकी है और यह सभी बड़ी पूँजी और मानव श्रम के विस्थापन से युक्त बड़े उद्योगों और व्यापार को ही लाभ पहुंचाने में लगी हैं!

8. ज़रूरत तोनई वास्तविकताओं के मद्देनजर समाजवाद को भी नया जामा पहनाने की है। हमारे जैसे बड़ी आबादी और विविध भौगोलिक और आंचलिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के देश में किसी केन्द्रीय नियंत्रण के बजाय आज आवश्यकता जमीनी स्तरपर हर अंचल और ग्रामों तक स्थानीय रूप से लोगों को स्वरचित और स्वकल्पित उद्योगों और सहकारी कार्यक्रमों में संलग्न होने देने और उन्हें सार्वजनिक उपक्रमों से मदद पहुंचाने की है। उसके लाभ हानि से स्थानीय समूहों को जोड़ने और आत्मनिर्णय लेने का अधिकार देने की है। नकि किसी बड़े छोटे पूंजीपति को उनके संसाधन सौंपने और उनके बीच लाभों की बंदरबांट करने की। परन्तु यह सब करने के लिए ईमानदार सोच और नियत होने की अनिवार्यता है जो आज हमारे सभी प्रचलित राजनीतिक दलों में सिरे से नदारद है और वर्तमान सत्ता के लिए तो ऐसा जोखिम उठाने के बारे में सोचना भी कल्पना से बाहर है।

9. पुराना नारा है जबतक देश और दुनिया में गैरबराबरी रहेगी तबतक समाजवाद ही उसका समाधान दे सकेगा। यह बात समझ लेने की है, यदि लोकतंत्र और समाजवाद के सही मामले में व्यवहार में कोई कमी रही है तो दोष उसके सिद्धांतों का नहीं, उसका दम भरने वाले राजनेताओं और उसके अमल में लाने के लिए बनाई गई संस्थाओं और व्यवस्थाओं का है। हमारे देश के बाहर समाजवाद के जो साम्यवादी प्रयोग हुए वह बहुत कुछ अलोकतांत्रिक और तानाशाही किस्म के रहे। अन्य समाजवादी देश भी अंततः तानाशाही के ही शिकार हुए। समाजवाद के विरुद्ध पूंजीवादी लोकतांत्रिक देशों ने स्वाभाविक रूप से इसका फ़ायदा उठाया और जगह जगह प्रतिक्रांतियों को प्रोत्साहित किया। हर देश की अपनी ऐतिहासिक और भौगोलिक चुनौतियॉ रहीं। जहॉ तक हमारे देश का सवाल है हमारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में समाजवाद का उद्येश्य गॉधी के रास्ते से ही पूरा होना था जबकि हमने भी केन्द्रीयकृत व्यवस्था के द्वारा उसे लाना चाहा जिसके नियंत्रकों के भ्रष्ट और लापरवाह होने का नतीजा हमारी पथभ्रष्टता में प्रकट हुआ। इसी के फलस्वरूप पूँजीवादी शक्तियों को फलने फूलने और अपने अनुकूल सरकारें बनवाने और अपना प्रभुत्व स्थापित करने का खुला मौका मिल गया। आज हमारी प्राकृतिक संपदा जल, जंगल, जमीन, खदानें सब निजी क्षेत्र के हवाले होता जा रहा या हो चुका है। शिक्षा और स्वास्थ्य सब निजी क्षेत्र को सौंपा जा रहा है। हमारे सभी बड़े आर्थिक उपक्रम रेल, सार्वजनिकक्षेत्र की नवरत्न कंपनियॉ, पी.एस.यू. आदि भी उनके द्वारा संचालित होने लगे हैं। अब मामला पी.पी.पी. या पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप से भी आगे निकलता जा रहा है और हमने अमेरिकी पूँजीवादी व्यवस्था को ही अपने विकास का विकल्प मान लिया है। हम जिस जी.डी.पी. या सकल राष्ट्रीय उत्पाद की बात करते हैं वह हमारे देश की 20 फीसदी आबादी और उसमें भी कुछ गिने चुने कार्पोरेट की संपदा या उत्पाद है जबकि हमारी 80 फीसदी से अधिक आबादी गंभीर आर्थिक संकट- बेरोजगारी या अत्यन्त कम आय वाले असुरक्षित रोजगारों के मकड़जाल में फंसी है। कटु यथार्थ है कि हम अपनी रसोई में सभी के लिए भोजन की व्यवस्था किए बिना अपना बैठका सजाने में लगे हैं। सभी को जागरूक बनाने वाली सर्वसुलभ शिक्षा की व्यवस्था के बजाय ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र को कुछ साधन संपन्न लोगों के लिए आरक्षित कर चुके हैं। दिखावटी सरकारी सहायता के बावजूद आम आदमी के स्वास्थ्य की व्यवस्थाओं को अत्यन्त मंहगे निजी चिकित्सालयों के भरोसे छोड़ चुके हैं आदि आदि। वर्तमान में हमारी स्थिति यही है कि एक बड़े बाग बगीचे और भवनों और भरे पूरे परिवार का स्वामी अपने ही दुष्कर्मों से अपने पोषितों को संरक्षण देने और उन सबकी तरक्की करने में निकम्मा साबित हो, फिर अपने प्रभुत्व को बनाए रखने की फिराक में अपने परिवार जनों में भेद पैदा कर दे और फिर उन्हें न संभाल पाने पर उन्हीं को दोषी बताते हुए उन्हें पालने पोसने और नियंत्रित रखने की जिम्मेदारी किसी बाहरी व्यक्ति को सौंप कर अपना परिवार (बीबी बच्चे सभी) और सम्पत्ति सभी उसके हवाले कर दे! फिर भी उसी का दलाल बन कर स्वयं को मुखिया मानता और बताता रहे!

तब क्या हमें धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के संकल्पों से पीछे हटना स्वीकार होगा! ऐसा करना क्या हमारे लिए पिछली गलतियों को सुधारने के बजाय उन्हें न केवल दोहराते रहना या एक ऐसी नवपूँजीवादी व्यवस्था के सामने हथियार डालना नहीं होगा जिसका नतीजा हमारी बर्बादी और एक नई गुलामी के अलावा और कुछ दूसरा कभी नहीं हो सकता!

महेश विक्रम

15.07.2025

सोशल मीडिया कितनी क्रांति कितनी अराजकता

प्रियदर्शन

अकबर इलाहाबादी का मशहूर शेर अब पुराना पड़ चुका है- खींचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुक़ाबिल हो तो अखब़ार निकालो। ' अब सत्ता की तोप के सामने अखब़ार और टीवी नहीं, सोशल मीडिया के प्लैटफॉर्म हैं। नेपाल में बिल्कुल हाल में हमने इसका नज़ारा देखा। बीस से तीस साल के नौजवानों ने- जिन्हें जेनरेशन ज़ी (ज़ेड) कहा जा रहा है, सोशल मीडिया पर ऐसा तूफ़ान खड़ा किया कि दो दिन नेपाल जलता रहा। प्रधानमंत्री केपी ओली सेना की मदद से किसी अज्ञात जगह छुपने को मजबूर हो गए। उनका महल जला दिया गया। उनके अलावा कई पूर्व प्रधानमंत्रियों के घर फूंक दिए गए, उन्हें घर से निकाल कर पीटा गया, सुप्रीम कोर्ट तक को जला दिया गया। जेलों से क़ैदियों को रिहा करा दिया गया। ऐसा लग रहा था कि नेपाल के नौजवान जैसे पूरे मुल्क को फूंक देने पर आमादा हैं। जैसे साहिर ने कभी 'प्यासा' के लिए लिखा था- जला दो इसे फूंक डालो ये दुनिया / तुम्हारी है तुम ही संभालो ये दुनिया, कुछ उसी तरह ये लड़के सबकुछ जलाते देखे गए। बाद में जब नेपाल में चीज़ें शांत हुईं और सेना प्रमुख के साथ बातचीत का सिलसिला चला तब भी इन लड़कों ने ऑनलाइन बैठकें कर तमाम विचार-विमर्श किए और किसी एक नाम पर सहमत होने में खास़ा वक़्त लिया।

दिलचस्प यह है कि भ्रष्टाचार और बेरोज़गारी के खि़लाफ़ बताया जा रहा यह आंदोलन जिस तात्कालिक वजह से परवान चढ़ा, वह सोशल मीडिया पर पाबंदी ही थी। नेपाल सरकार ने एक हफ़्ते पहले फेसबुक, इंस्टाग्राम, वाट्सऐप, मेसेंजर, लिंक्डइन, स्नैपचैट, एक्स (ट्विटर) जैसे 26 ऐप्स पर पाबंदी लगा दी थी। सररकार ने दलील दी कि ये लोग नेपाल के क़ानूनों का सम्मान नहीं कर रहे हैं। इनसे कहा गया था कि वे वहां के सूचना और संचार मंत्रालय में अपना पंजीयन कराएं। लेकिन इन कंपनियों से इस आदेश की परवाह नहीं की। इस वजह से इन्हें रोका गया है। नियमन का आदेश नेपाल के सुप्रीम कोर्ट का था।

लेकिन यह तकनीकी स्पष्टीकरण बस सतह की सच्चाई बताता था। सच यह है कि दुनिया भर की सरकारें सोशल मीडिया के स्वच्छंद स्वभाव से परेशान हैं। किसी सरकार को अपनी आलोचना रास नहीं आती। नेपाल सरकार को भी रास नहीं आ रही थी। लेकिन सोशल मीडिया इन दिनों बस बात कहने का माध्यम नहीं रह गया है, वह बहुत सारे दूसरे ज़रूरी कामों में भी मददगार है। उसके ज़रिए निजी दोस्तियां होती हैं, पढ़ाई होती है, दफ़्तरों के काम निबटाए जाते हैं, कारोबार भी किया जाता है। अचानक नेपाल में यह सब ठप्प हो गया। नतीजे में ऐसी आग लगी कि उसी रात नेपाल सरकार को पाबंदी का आदेश वापस लेना पड़ा।

सबसे कमाल की बात यह है कि नेपाल के लड़कों ने अपना नया नेतृत्व सोशल मीडिया पर ही चुना। डिस्कॉर्ड नाम के ऐप पर हज़ारों लड़के जुटे। उन्होंने खूब बहस की। अंततः ऐप पर ही जनमत संग्रह किया। ज़्यादातर लड़कों ने सुशीला कार्की के पक्ष में राय दी। बाक़ी दावेदार पीछे छूटते दिखे। यहीं से लड़कों ने उनका नाम आगे बढ़ाया।

नेपाल के इस प्रसंग पर वापस लौटेंगे, लेकिन पहले फ्रांस को याद कर लें। जब नेपाल जल रहा था, तब अचानक फ्रांस में नाराज़ लोगों के सड़कों पर उतरने की खब़र आई। अलग-अलग शहरों में लोग प्रदर्शन पर उतारू थे, आगज़नी कर रहे थे। पता चला कि इन्होंने सोशल मीडिया पर मई से मुहिम चला रखी थी। उन्होंने अपने आंदोलन का नाम दिया था- ब्लॉक एवरीथिंग। वे मैक्रों की नीतियों से नाराज़ थे और सोशल मीडिया पर अपना आंदोलन बढ़ा रहे थे।

हम याद कर सकते हैं कि 2010 में भ्रष्टाचार के खि़लाफ़ दिल्ली में अण्णा हज़ारे और उनके साथियों का जो आंदोलन शुरू हुआ, वह भी सोशल मीडिया के ज़रिए ही परवान चढ़ा। फेसबुक और ट्विटर पर शहर-शहर में न जाने कितने जंतर-मंतर बन गए। बिना किसी बाहरी मदद या प्रचार के सोशल मीडिया पर ही यह आंदोलन इतना बड़ा हो गया कि इसकी कोख से एक पार्टी निकल पड़ी, दो-दो राज्यों में उसने सरकार बना ली।

सोशल मीडिया की इस बढ़ती ताक़त को सारी दुनिया महसूस कर रही है। इसका एक महत्वपूर्ण पहलू

यह है कि इसी दौर में जिसे मुख्यधारा का मीडिया कहते हैं, वह जैसे अपनी चमक और धार खो बैठा है। भारत में अखबा़र और टीवी चैनल सरकारों के खिला़फ़ जाने से बचते हैं। बल्कि पिछले 12 साल से स्थिति यह है कि वे सरकार के साथ खड़े हैं। अखबा़रों ने तो फिर भी कुछ संयम-संतुलन दिखाया है, लेकिन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तो जैसे पूरी तरह सरकार का भोंपू बन गया है। लोगों ने उससे उम्मीद खो दी है। वहां खब़रों की जगह तमाशा है और सरोकार की जगह सनसनी है। लोकतांत्रिक आवाज़ें दबाई जा रही हैं और सत्ता के प्रचार को दिखाया जा रहा है। दरअसल अखबा़रों या टीवी चैनलों में लगी भारी पूंजी का दबाव है कि वे उद्योगपतियों और सरकारों के इशारों पर चलें और या तो सेल्फ सेंसर पर अमल करें या खब़रों से आंखें मूदे रखें।

दूसरी तरफ़ जिसे सोशल या डिजिटल मीडिया कहते हैं, वह ऐसे दबाव से बहुत दूर तक मुक्त है। बहुत कम साधनों पर- बस एक मोबाइल के सहारे- लोग अपनी बात कहीं भी पहुंचा सकते हैं। फेसबुक और ट्विटर से ज्यादा यू ट्यूब बिल्कुल क्रांतिकारी ढंग से सरकार का प्रतिपक्ष बना हुआ है। सरकार पर नज़र रखने का, सरकारी नीतियों की आलोचना करने का, जो अपेक्षित काम मुख्यधारा का मीडिया छोड़ चुका है, उसे समानांतर या सोशल मीडिया ने अपना लिया है। अब वही असली प्रतिपक्ष है। वहीं से कई यू ट्यूबर सरकार की बखिया उधेड़ रहे हैं। यह यू ट्यूब की नई बनती भूमिका है। चाहें तो याद कर सकते हैं कि पिछले एक दशक में ऐसे कई मुद्दे सोशल मीडिया पर उभरे जिन्हें पहले मुख्यधारा के मीडिया ने नज़रअंदाज़ किया था। 2012 के निर्भया कांड को भूला नहीं जा सकता। पहले दिन अखबा़रों और टीवी चैनलों ने इस खब़र को बहुत तवज्जो नहीं दी। लेकिन सोशल मीडिया पर जब लोगों का गुस्सा दिखने लगा, तब सब निर्भया के न्याय की मुहिम में लग गए। इसी तरह जींद के एक गांव में दो बहनों की पेड़ से लटकी हुई लाश दो दिन सोशल मीडिया पर घूमती रही और फिर अखबारों या टीवी चैनलों ने इसकी सुध ली। बेशक, ऐसे भी मामले सामने आए हैं जब टीवी या अखबा़रों में छपी खब़र सोशल मीडिया ने उठाई और इसे बहुत बड़ा बना दिया। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि सोशल मीडिया ही अब मुख्य मीडिया हो गया है। कई यू ट्यूबर पत्रकारों के रोज़ के व्यू और हिट लाखों नहीं करोड़ों में जाते हैं- उतने जितने कोई अखबा़र नहीं बिकते। फेसबुक, यू ट्यूब इंस्टाग्राम और वाट्सऐप पर 50 करोड़ से ज़्यादा यूज़र रोज़ अपनी सक्रियता दिखाते हैं, औसतन करीब दो घंटे 90 मिनट वे यहां बने रहते हैं। इससे जनमत निर्माण के लिहाज सोशल मीडिया की क्षमता समझ में आती है. दरअसल मुख्यधारा के मीडिया ने अब अपना डिजिटल अवतार भी पेश कर दिया है। हर अखबार और टीवी चैनल का अपना पोर्टल है जिसमें सोशल मीडिया की खब़रें भी प्रमुखता से रहती हैं।

हालांकि नेपाल के दृष्टांत से ही हम सोशल मीडिया के खत़रे समझ सकते हैं और भारत के अनुभव से जान सकते हैं कि इस मीडिया को कैसे हाइजैक करने की कोशिश हो रही है। सोशल मीडिया एक दिशाहीन तूफ़ान पैदा करता है- उसके पीछे जज़्बात होते हैं, कोई वैचारिकता नहीं। इसलिए कई बार ये आग काफी कुछ जला कर बुझती है तो यथास्थिति लौट आती है- बल्कि इसका फ़ायदा दूसरे शातिर लोग उठा लेते हैं। नेपाल में हमने देखा कि लड़कों ने काफी कुछ जला दिया, लेकिन यह तय नहीं कर पाए कि आगे उन्हें क्या करना है। अब सोशल मीडिया पर वहां बनी नई प्रधानमंत्री सुशीला कार्की के इस्तीफ़े की मांग भी शुरू हो गई है। साफ है कि दिशाहीनता सोशल मीडिया पर पैदा होने वाले आंदोलनों का एक स्वाभाविक बाई प्रोडक्ट होती है।

भारत में स्थिति कुछ और अलग हो उठी है। यहां सोशल मीडिया के इस्तेमाल से ज़्यादा उसका दुरुपयोग शुरू हो गया है। तमाम राजनीतिक दलों ने अपने आइटी सेल बना लिए हैं जो फेसबुक, एक्स या यू ट्यूब पर फेक न्यूज़ का अंबार लगाते रहे हैं। यही नहीं, सोशल मीडिया नफ़रत और हिंसा के प्रसार का सबसे आसान जरिया हो गया है। नफ़रती और झूठे संदेश बड़ी तेज़ी से फैलाए जाते हैं। वाट्सऐप पर इतिहास और वर्तमान दोनों को तोड़ने-मरोड़ने-पलटने वाले संदेश भरे पड़े होते हैं और लोग दिमाग़ लगाने की जगह अंगूठा लगाकर इसे फारवर्ड करते रहते हैं। बीते कई सालों में सोशल मीडिया ने दंगाई माहौल बनाने में भी अहम भूमिका निभाई है।

इसके बावजूद अंततः सोशल मीडिया प्रतिरोध का वह व्याकरण फिर भी रच रहा है जिसकी इस देश को जरूरत है। अगर यह न होता तो सरकारी प्रचार तंत्र का उन्माद अपने चरम पर होता, देश की सांप्रदायिक ताक़तें बेलगाम होतीं और सरकार आज से ज़्यादा बेलिहाज होती।

एक प्रतिबद्ध वकील की आकस्मिक मृत्यु

जनता के सरोकरों के लिए समर्पित और भारत में फॉयल वेदान्ता के कार्यकर्त्ताओं के साथ काम करते रहे वकील बिस्व परमगुरु से संबंधित इस शोक संदेश को पोस्ट करते हुए फॉयल वेदान्ता बुरी तरह मर्माहत है जिनकी 10 सितम्बर, 2025 को एक मोटरसाइकिल दुर्धटना में अत्यन्त दुखद तरीके से मृत्यु हो गयी।

प्रस्तुत है बिस्वा की मधुर स्मृतियों एवं उनके जीवन व कार्यों की प्रशंसा से युक्त ऐश्वर्या सरकार का लेख- बिस्वरंजन परमगुरु, जिन्हें हम प्यार से बिस्वा बुलाते रहे, से मेरा परिचय हम दोनों के साथी श्री समरेन्द्र दास ने वर्ष 2019 में भारत में नई दिल्ली में कराया था। यह मुलाकात बाद में 2021 में वेदान्ता के विरुद्ध मेरे द्वारा पर्यावरण के नियमों के उल्लंघन से जुड़े एक कानूनी मसले को उठाए जाने से संबंधित थी। हमारे इस विचार विमर्श के द्वारा मुझे फॉयल वेदान्ता के कार्यों और बिस्वा की जमीनी क्रियाशीलता एवं पर्यावरण संबंधी कानूनों के पक्ष में किए जा रहे कार्यों के इतिहास की विस्तृत जानकारी हुयी। इसी ने मुझे अपने मूल राज्य छत्तीसगढ़ के कोर्बा में उसी प्रकार का कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

अपने शोध के दौरान मुझे पता लगा कि 2014 में बिस्वा ने भारत में हिराकुण्ड में हिण्डालको इण्डस्ट्रीज़. के खिलाफ एक बहुत महत्वपूर्ण याचिका दाखिल की थी जिसमें उससे होने वाले फ्लोराइड उत्सर्जन से वहाँ खेती की जमीनों एवं पालतू पशुओं पर विषैला प्रभाव पड़ने का सवाल उठाया था। तब मुझे पता चला कि यह खतरा कितना बड़ा था जिससे पशुओं के दांत झड़ रहे थे, फसलों का उत्पादन कम हो गया था और परिवार गरीब हो रहे थे। उनकी शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दे रहा था। बिस्वा ने स्वयं एक याचिका कर्ता के नाते यह सुनिश्चित किया कि इस त्रासदी से लड़ने का कानूनी रास्ता है। 2018 में माननीय नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने हिण्डालको को इस नुकसान के बाबत जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, संभलपुर के माध्यम से 50 लाख रूपयों का मुवावजा देने का निर्देश दिया।

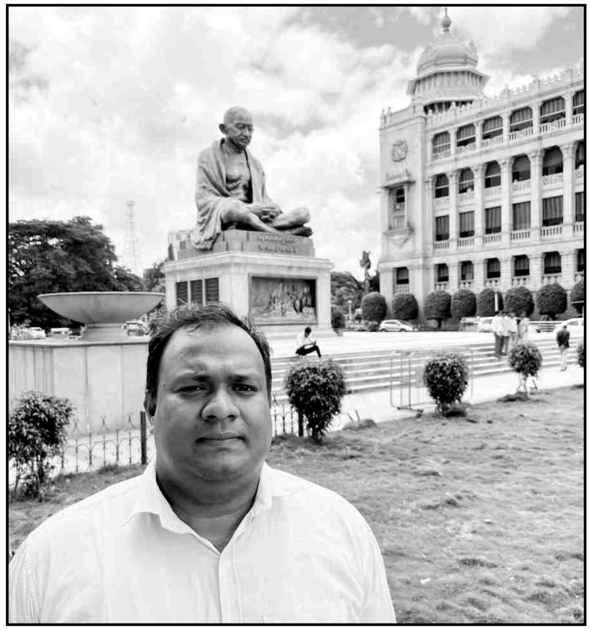

इसके बाद 2020 में बिस्वा ने कुलवन्त सिंह एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले को लिया जिसमें पंजाब में तलवण्डी साबो पॉवर लिमिटेड (टीएसपीएल) को चुनौती दी गई थी। लगभग 965 एकड़ खेतिहर जमीन उड़न राख (फ्लाई ऐश) से नष्ट हो गई थी और कपास एवं धान के खेत भूरी धूल से ढक गए थे। अनेक किसान किसी प्रकार के न्याय की उम्मीद खो चुके थे। लेकिन बिस्वा उनके बरबाद हो चुके खेतों में चले, उनके घरों में गए और उनकी कहानी सुनी। अथक परीश्रम करते हुए उन्होंने याचिकाकताओं को विश्वास दिलाया कि वह उन्हें राहत दिलवाएगें। इस बीच उन पर मामले पर समझौता कर लेने और केस से हट जाने के दबाव भी पड़े परन्तु इन सब दबावों का उनके चरित्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंततः माननीय नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने सीआरपीसी की धारा 133 के अंतर्गत् बतौर मुवावजा टीएसपीएल को 84,99,574 रूपए देने का निर्देश दिया। यह निर्णय अभी भी एक अच्छे कानून के रूप में मान्य है।

वर्ष 2022 में मैं सोन कुंवर एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले में ड्राफ्ट तय करने के

लिए परामर्श लेने बिस्वा के पास गयी। यह मामला भारत में कोर्बा, छत्तीसगढ़ में वेदान्ता के बाल्को थर्मल पॉवर प्लाण्ट से संबंधित था जहाँ फ्लाई ऐश का संग्रह किया जा रहा था और उससे छत्तीसगढ़ के रोगबहरी, कोर्बा आदि समीपवर्ती गांवों में प्रदूषण फैल रहा था। यद्यपि स्थानीय निवासियों ने उसके विरुद्ध याचिका दी थी किन्तु यह मामला कई पेंचीदिकियों में उलझा हुआ था जिसमें कई अन्य मुकद्दमें, पर्यावरण विभाग से अनुमति, पर्यावरण के नियमों का उल्लंघन, ग्रामीणों के अधिकार तथा अन्य कई तकनीकि बारीकियाँ शामिल थीं। कुछ घंटे साथ बिताने पर बिस्वा ने सब कुछ साफ़ कर दिया। यद्यपि कुछ बातें इसमें नई थीं किन्तु बिस्वा ने कागजों को पुनरीक्षित करते हुए नियमों के उल्लंघन एवं आवश्यक साक्ष्यों को निर्धारित करने के साथ उसे ऐसे हल कर दिया जैसे उसने ऐसे कई मामले पहले भी तय किए हों। उन्होंने मुझे अपनी याचिका को प्रभावी बनाने में मदद की जिससे साफ़ हो सका कि किन नियमों का उल्लंघन हुआ है, क्या राहत मिलनी चाहिए और किन तथ्यों को सामने रखा जाना चाहिए। 2023 में एनजीटी ने माना कि याचिकाकर्ताओं की मांग जायज है और उन्हें मुवावजे के लिए एसडीएम के पास जाने को कहा।

पिछले साल बिस्वा रमेश साजो गाउन बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले में भारत में बिचोलिन, गोआ में वेदान्ता लिमिटेड के लौह अयस्क के उत्खनन के प्रोजेक्ट से संबंधित पर्यावरण क्लिएरेंस के सवाल पर एनजीटी में प्रस्तुत हुए। वेदान्ता कम्पनी ने तथ्यों को छिपाते हुए झूठ बोलकर यह क्लिएरेंस हासिल की थी कि उसे लीज़ में प्राप्त क्षेत्र में कोई जल स्रोत नहीं हैं। अपनी वैधानिक जांच पड़ताल से बिस्वा यह साबित करने में सफल रहे कि लीज़ किए गए क्षेत्र में 13 झीलें हैं जो खेती, मत्स्य पालन और स्थानीय निवासियों के सामुदायिक जीवन के लिए नितान्त उपयोगी हैं।

यद्यपि केस को तैयार करने से लेकर उसे न्यायालय में पंजीकृत करने की यात्रा किसी भी तरह आसान नहीं थी जिसमें प्रक्रियात्मक अवरोध, विलम्ब और इसके साथ स्वयं उनके स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ सभी कुछ शामिल था फिर भी बिस्वा दृढ़तापूर्वक अपने काम पर डटे रहे और उन्होंने अपने केस को ट्रिब्यूनल तक पहुंचाने और उसकी योग्यता पर उसे परीक्षित कराने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ट्रिब्यूनल ने मामले की गंभीरता को समझा और याचिका के गुण के आधार पर अपील में हुई देरी को अनदेखा कर दिया।

बिस्वा ने कठिन प्रश्नों या खतरों से कभी मुंह नहीं मोड़ा। उनके परामर्श में किसी प्रकार के समझौतों से परे वही सच्चाई रही जो उन्होंने स्वयं अपने कामों में रखी थी। इसके अलावा उनके साथ सात वर्षों तक कार्य करते हुए मैंने स्वयं एक नौसिखिए के रूप में वह बहुत कुछ सीखा कि किसी केस को एनजीटी तक पहुंचाने के लिए किस प्रकार के साक्ष्यों एवं सिद्धान्तों का अनुपालन करना होता है।

बिस्वा को विशेष बनाने में केवल कानूनी दांव-पेंच संबंधी उनकी जानकारी और पर्यावरण एवं विरासत के हित में उसके उपयोग की दक्षता ही नहीं थी, बल्कि उसमें उनकी सच्चाई और उसके लिए उनका जुनून भी था। वह उच्च नैतिकता के स्वामी थे और किसी त्वरित प्रतिष्ठा और लोकप्रियता की प्राप्ति के पीछे नहीं थे। उन्होंने परीश्रम से कभी समझौता नहीं किया। जिन्हें व्यवस्था ने हासिये पर रख छोड़ा था उन्हें न्याय एवं राहत दिलाने के लिए वह अथक कार्य करते रहे। वह उन लोगों में से नहीं थे जो कार्पोरेशन के साथ समझौता करके खुद अपने लिए एक बड़ा हिस्सा पा लेने की फिराक में होते हैं। उनके इसी उच्च चरित्र और उनकी दीर्घकालीन कानूनी अनुभव ने उन्हें सबसे ऊपर स्थापित कर दिया था। न्याय के प्रति उनकी भयंकर निष्ठा थी और उससे वह कोई समझौता नहीं कर सकते थे। इसमें वह कोई किन्तु परन्तु नहीं स्वीकार करते थे। न्यायालय के समक्ष उनकी प्रस्तुति पूरे आग्रह से युक्त और बिना किसी कमजोरी के होती थी और उनकी आक्रामकता कभी उनके व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं होती थी। वह तर्कों पर खड़ी होती थी, जिसे वह साक्ष्यों को पूरी तरह जांच परख कर प्रस्तुत करते थे, लोगों की त्रासदी को समझते थे, उनके कारणों को रेखांकित करते थे और मानते थे कि गलत तर्कों से केवल सफाई और मजबूती से लड़कर ही न्याय पाया जा सकता है। न्यायाधीश भी यह मानते थे। वह उनका सम्मान करते थे क्योंकि उनके तर्क भावुकतापूर्ण आक्रोष न होकर कानून और तथ्यों के दायरे में तार्किकता के साथ गढ़े होते थे। वेदान्ता के विरुद्ध प्रत्येक मामले में उसके द्वारा पहुंचाए गए पर्यावरण के नुकसान को उन्होंने भरपूर रूप से दिखाया और उसे ठीक प्रकार से प्रस्तुत करने में कोई असंमजस नहीं दिखाया।

ग्रामीणों के लिए बिस्वा के काम महज उनकी

विजय नहीं होते थे। यह उनके लिए इस बात की स्वीकारोक्ति थी कि उनकी समस्याएँ वास्तविक हैं और उनकी आवाज मायने रखती है। और यह सब कुछ इसलिए संभव हुआ है क्योंकि बिस्वा ने केस दर केस, जिन्दगी दर जिन्दगी अपने को पूरी तरह सामाजिक और पर्यावरणीय मसलों के लिए समर्पित किया हुआ था।

जब मैं पीछे मुड़कर यह सब देखती हूँ तो मुझे वह सब दिखाई देता है जो बिस्वा से मैंने सीखा है और जो उन्होंने फॉयल वेदान्ता के लिए किया है। मुझे महसूस होता है कि मैं उनके साथ केवल किसी केस पर काम नहीं कर रही थी, वह मेरी वह समझ बना रहे थे कि न्याय पाने का मतलब क्या है। उन्होंने मुझे सिखाया कि सभी प्रकार की दिक्कतों के बावजूद समुदाय के साथ और उनके लिए काम करना क्या मायने रखता है। अनेक वर्षों के अनुभव के बावजूद उनमें किसी तरह का अहम् नहीं था। वह बहुत विनम्रता से अपने जूनियरों से भी सलाह ले लेते थे। इससे कारण उनके कटु आलोचक और विरोधी भी उन्हें पसंद करते थे और उनके जुझारूपन और आदर्शों के कायल थे। उनके साथ काम करने वाले अधिकांश लोग उनके चरित्र और व्यावसायिक अनुभव के कारण उन्हें बहुत सम्मान देते थे।

उनसे मिले ज्ञान को मैं कभी भुला नहीं सकती। उनके वकालती गुणों, उनसे होने वाले सवालों और आलोचना के लिए उनकी सहजता, उनके ऊर्जायुक्त व्यवहार, कुछ अलग साबित करने की तत्परता, सहज मुस्कान, अपने परिवार के प्रति जिम्मेदारी, और वस्तुतः उनकी कानूनी जानकारी के लिए मैं उन्हें हमेशा दिल से याद करूँगी।

यह जिन्दगी का क्रूर आघात है कि चरित्र और उद्येश्य से परिपूर्ण ऐसे कर्मठ व्यक्ति को अचानक हमसे छीन लिया गया। अभी उन्हें बहुत कुछ करना था और अभी बहुत कुछ हमें उनसे सीखना था। वह अपने मित्रों और सहयोगियों के लिए किसी भी शैक्षिक या कठिन व्यावसायिक परामर्श के लिए हमेशा उपलब्ध होते थे, अब सभी उन्हें इसके लिए खोजेंगे। सब उन्हें इसलिए खोजेंगे कि वह सभी के लिए एक भरोसा थे, उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर कठिन परिस्थितियों से उन्हें निकालने के लिए दिन या रात कभी भी तैयार रहते थे। वह हमेशा हमारे हृदय में रहेंगे क्योंकि मैंने सच में एक ऐसा मित्र खो दिया है जो मुझे जानता था और मुझे बेलाग लपट अपना मंतव्य बताता था।

बिस्वा अपने पीछे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सुदेशा रथ, पुत्री अक्षिता परमगुरु, पिता श्री किशोर चन्द्र परमगुरु, माता श्रीमती सुरेखा पाणी और अपने भाई श्री अतीशरंजन परमगुरु एवं श्री चितरंजन परमगुरु को छोड़ गए हैं।

ऐश्वर्या सरकार, बिस्वा की सहकर्मी एवं मित्र
छत्तीसगढ़, भारत

चार्वाक के वारिस

समाज, संस्कृति और सियासत पर प्रश्नवाचक

सुभाष गाताडे

पृष्ठ संख्या : 314 मूल्य : 399 रुपये

ऑथर्स प्राइड पब्लिशर प्रा. लि.

55-ए, पॉकेट-डी, एस.एफ.एस.,
मयूर विहार पप्पू दिल्ली

फोन : 9810402776, 9810408776
ईमेल : info@authorspride.com

सच्चिदानन्द जी से एक पुराना साक्षात्कार

विरेन्द्र कुमार झांकर

(सितंबर 2005 में साथी सच्चिदानंद सिन्हा का पश्चिम ओडिशा का दौरा हुआ था। जिस दिन उन्हें बलांगीर छोड़ना था उसके एक दिन पहले प्रतिबद्ध युवा पत्रकार साथी वीरेंद्र कुमार झांकर ने साप्ताहिक अखबार 'रुद्र आह्वान' के लिए साक्षात्कार हेतु समय मांगा। चूंकि साथी सच्चिदानंदजी को अल-सुबह बलांगीर छोड़ना था इसलिए उन्होंने कहा कि सुबह पांच यदि आ सकते हों तब ही बातचीत मुमकिन होगी। मौसम प्रतिकूल था,लगातार बारिश हो रही थी। सुबह पांच बजे जब साथी वीरेंद्र कुमार झांकर ने दरवाजा खटखटाया तो सच्चिदाजी ने स्वयं दरवाजा खोला। इस युवा पत्रकार की अखबारनवीसी के प्रति प्रतिबद्धता और तत्परता से प्रभावित होकर सच्चिदाजी ने कहा, 'उम्मीद अभी जिंदा है। ' वीरेंद्र कुमार झांकर ने इस बात को आशीष मानकर गांठ बांध कर लिया। वे गत बीस वर्षो से पत्रकारिता कर रहे हैं। प्रमुख ओड़िया दैनिक धरित्री के जिला ब्यूरो प्रमुख हैं। बातचीत की प्रासंगिकता के कारण इसे हिंदी में छापा जा रहा है। वीरेंद्रजी ने ही बातचीत को हिंदी में प्रस्तुत किया है। - सामयिक वार्ता)

वैश्वीकरण, तीव्र औद्योगीकरण, वृद्धि, उन्नति, प्रगति जैसे शब्दों में पूँजीवादी शक्ति के अधीन होने के लिए हम सब जैसे आतुर हैं। हममें से कितने लोग 'वैश्वीकरण', 'विश्वायन', 'ग्लोबलाइजेशन' के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों, जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक परंपराओं पर हो रहे हमले पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं? क्या हमने कभी दुनिया को तेज़ी से विनाश की और ले जा रही पूँजीवादी सत्ता के विकल्प के बारे में सोचा है? श्री सच्चिदानंद सिन्हा उन चंद समर्पित व्यक्तियों में से एक हैं जिन्होंने ऐसे वैकल्पिक मार्ग की खोज में अपना जीवन समर्पित कर दिया है। वे 35 वर्षो (2005 का साक्षात्कार) से भी अधिक समय से समाजवादी आंदोलन के एक निरव साधक के रूप में कार्यरत रहे हैं। ग्लोबीकरण की चमक में उन्हें महाविनाश का विस्फोट दिखाई देता है। बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के परसौनी गाँव में 1928 में जन्मे सच्चिदानंदजी आजीवन ब्रह्मचारी और समाज के लिए समर्पित रहे हैं। वे 'सोशलिज़्म एण्ड पावर', ईन्टरनल कॉलोनी', कास्ट सिस्टम- मिथ, रिएलिटी एण्ड चैलेंज', 'दि अनआर्म्ड प्रोफेट', 'कोलिशन इन पॉलिटिक्स'',के आस एण्ड क्रिएशन', 'नक्सलवादी आन्दोलन का वैचारिक संकट', 'वर्तमान विकास की सीमॉए' आदि तात्विक और समसामयिक वैचारिक पुस्तकों के लेखक हैं। 29 सितंबर (2005) को बलांगीर (ओड़िशा) आगमन के अवसर पर उनसे मुलाकात की 'रुद्र आह्वान' (साप्ताहिक) के प्रतिनिधि वीरेंद्र कुमार झांकर ने ।

रुद्र आह्वानः वैश्वीकरण का वास्तविक स्वरूप क्या है?

सच्चिदानंदजीः वैश्वीकरण वास्तव में पूँजीवादी विकास की चरम स्थिति है। पूँजीवादी व्यवस्था की विशेषता है विस्तार करना और अन्य विद्यमान व्यवस्थाओं का विनाश करना । व्यापार या हथियारों के माध्यम से, यह विभिन्न क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहा है। पश्चिम एशिया इसका एक उदाहरण है। सऊदी अरब, इराक, ईरान पर प्रभुत्व स्थापित करने का एकमात्र उद्देश्य है उनके तेल उत्पादन को नियंत्रित करना । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि दुनिया अब अमेरिका और उसकी बड़ी कंपनियों के कब्ज़े में है। व्यापार या हथियारों के ज़रिए विभिन्न देशों की आर्थिक व्यवस्थाओं और जीवन-पद्धति का विनाश करके अपने प्रभुत्व का विस्तार करना ही वैश्वीकरण है।

रुद्र आह्वानः तो क्या इसे रोका जा सकता है?

सच्चिदानंदजीः यह लोगों की इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है। हमारे देश में, जब महात्मा गांधी ने 1920 के दशक में स्वदेशी आंदोलन शुरू किया था,

तब इस व्यवस्था को गहरा धक्का लगा था। अगर हम उसी तरह से आत्मनिर्भर बनें, तो इसे रोक सकते हैं।

रुद्र आह्वानः समाजवाद की तस्वीर अभी स्पष्ट नहीं है। साम्यवादी सोवियत रूस के पतन और चीन का वैश्वीकरण के पीछे दौड़ने से समाजवाद की तस्वीर पर क्या असर पड़ा है?

सच्चिदानंदजीः साम्यवाद या समाजवाद के पतन के लिए वैश्वीकरण या पूंजीवाद उतना ज़िम्मेदार नहीं है, बल्कि उसकी आंतरिक कमज़ोरी उतनी ही ज़िम्मेदार है। समाजवाद का मुख्य लक्ष्य लोगों के बीच समानता बनाए रखना, लोगों को अधिकतम स्वतंत्रता देना और लोगों के न्यूनतम जीवन स्तर को ऊपर उठाना था। रूसी क्रांति के बाद शुरू हुई विकास प्रक्रिया धीरे-धीरे भटक गई। इसका एक बड़ा कारण है हिंसक होना।

हालाँकि माओत्से तुंग ने चीन में सबसे पहले जिस साम्यवादी आंदोलन की शुरुआत की, उसमें उन्हें सफलता मिली, लेकिन बाद में जब उन्हें एहसास हुआ कि दुनिया में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए हथियारों की होड़ और तेज़ औद्योगीकरण ज़रूरी है, तो उनकी साम्यवादी विकास धारा बाधित हो गई। हालाँकि, रूस और चीन से समाजवाद के चित्र का आकलन न करके समाजवाद की आंतरिक कमज़ोरियों की जड़ें उखाड़कर उसकी वर्तमान सफलताओं की ओर एक नया रास्ता बनाने का समय आ गया है।

रुद्रआह्वानः ग्लोबलाइजेशन का बिहार और ओडिशा के पिछड़े इलाकों से क्या नाता है?

सच्चिदानंदजीः वैश्वीकरण पूंजीवादी विस्तार का अंतिम चरण है। सबसे पहले शुरू हुआ उपनिवेशवाद वैश्वीकरण का पहला चरण था। भारत के तटीय उपनिवेशों के नियंत्रण में बिहार, ओडिशा, उत्तर बंगाल, असम आ गए थे। जिन्हें 'इन्टरनल कॉलोनी' (आंतरिक उपनिवेश) कहा जाता था। इन आंतरिक उपनिवेशों का शोषण किया गया और तटीय उपनिवेशों और उनकी अपनी कंपनियों के विकास की प्रक्रिया को अपनाया गया। तो आज भी, वैश्वीकरण या पूंजीवाद की इस चरम अवस्था में, इन अविकसित क्षेत्रों का एक बार फिर आंतरिक उपनिवेश की तरह शोषण होगा। यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों, जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक परंपराओं पर हमला होगा।

रुद्रआह्वानः वैश्वीकरण, माओवादियों और नक्सलवादियों के वृद्धि पर आपकी क्या राय है?

सच्चिदानंदजीः माओवादी तो बस एक नाम हैं। हमें वास्तव में चीन का कोई अनुभव नहीं है। माओ त्से तुंग ने चीन में आर्थिक और सांस्कृतिक आंदोलन शुरू किया और फिर अंततः पूंजीवाद की ओर मुड़ गए। तो क्या भारत में, हमें एक बार फिर लोगों से कहना चाहिए कि वे 40 साल तक आन्दोलन करें और अंततः पूंजीवाद की ओर मुड़ें? वास्तव में, अगर हम इसे दीर्घकालिक दृष्टिकोण से देखें, तो माओवादी दृष्टिहीन हो गए हैं। माओवादियों के पास कोई वैकल्पिक रास्ता नहीं है। पर माओवादियों की वृद्धि का कारण स्थानीय और तात्कालिक परिस्थितियाँ है । यहाँ की नौकरशाही और व्यवस्था आम लोगों के प्रति इतनी असंवेदनशील हो गई है कि वे तत्काल समाधान चाहते हैं। इसलिए, माओवादियों की गतिविधियों को कुछ हद तक जन समर्थन भी मिल रहा है।

रुद्र आह्वानः - छोटे प्रांतों के गठन की माँग पर आपकी क्या राय है?

सच्चिदानंदजीः मेरे विचार से, यह एक बहुत ही उचित माँग है। अगर छोटे प्रांत होंगे, तो स्वशासन की व्यवस्था फलदायी होगी और लोगों को हर चीज़ पास में ही उपलब्ध होगी। महात्मा गाँधी 'विलेज रिपब्लिक' (गांव गणराज्य) की बात करते थे। ऐसा होना ही चाहिए। छोटे प्रांतों की माँग पर घबराने की कोई बात नहीं है।

रुद्र आह्वानः - आप लगभग 40 वर्षों से समाजवादी आंदोलन से जुड़े हैं। तो आप अपने अनुभव से किस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं?

सच्चिदानंदजीः आज भी हम सफलता से बहुत पीछे हैं। हमें और भी अधिक परिश्रम करना होगा। वैश्वीकरण का विस्तार जिस तेज़ी से हो रहा है अगले 50 वर्षों में शायद ही विश्व बचा रह पाएगा। ऐसे में हमारी ज़िम्मेदारी और भी बढ़ गई है। अब समय आ गया है कि समाजवाद के सही स्वरूप का निर्धारण किया जाए और उसकी स्थापना की ओर बढ़ा जाए ताकि वैश्वीकरण हमारे प्राकृतिक संसाधनों, जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक परंपराओं और आर्थिक विकास पर अपना प्रभाव न फैला सके, और इसके लिए युवा समाज को नेतृत्व लेना होगा। वैश्वीकरण के शोषण को रोककर युवा शक्ति ही समाजवाद की स्थापना कर सकती है। उन्हें ही यह महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी उठानी होगी।

सौजन्यः 'रुद्र आह्वान' (ओडिआ साप्ताहिक), 24.10.2005 को प्रकाशित).

बिजली 'सुधार' किसानों और गरीबों के लिए अंधकार लेकर आए; बिजली दिग्गजों के लिए अंतहीन मुनाफा

वीजू कृष्णन

नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार बिजली क्षेत्र में 'सुधारों' को तेजी से आगे बढ़ा रही है। यह तब है जब नवंबर 2021 में तीन कृषि कानूनों को वापस लेने के लिए मजबूर होने के दौरान किसानों से वादा किया गया था कि उनकी चिंताओं पर विचार किए बिना बिजली अधिनियम (संशोधन) विधेयक को आगे नहीं बढ़ाया जाएगा। उनके पूर्ववर्ती अटल बिहारी वाजपेयी ने वर्ष 2000 में भारत में मुनाफाखोरी के अनंत अवसरों की ओर इशारा करते हुए अमेरिकी निवेशकों को लुभाया था और नए बिजली विधेयक की ओर इशारा किया था जिसका उद्देश्य बिजली क्षेत्र को विनियमित करना और निजी खिलाड़ियों को बिजली उत्पादन, पारेषण और वितरण पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता देना था। हमेशा की तरह घरेलू स्तर पर यह तर्क दिया गया कि राज्य बिजली बोर्ड भारी घाटे में चल रहे हैं और दक्षता और 'अधिक उपभोक्ता स्वतंत्रता' के नाम पर 'सुधार' अपरिहार्य थे।

हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि विद्युत (आपूर्ति) अधिनियम, 1948 तथा राज्य विद्युत बोर्डों को नियंत्रित करने वाले समान अधिनियमों में जिस सामान्य सिद्धांत का पालन किया गया है, वह सामाजिक-आर्थिक विकास तथा सामाजिक शुल्कों की अवधारणा पर जोर देना है। इन विधानों में ऐसा कुछ भी नहीं था कि उन्हें घाटा नहीं उठाना चाहिए। यह अंतर्निहित सिद्धांत विभिन्न वर्गों से राजस्व के स्तर को निर्धारित करता है तथा उपभोक्ता द्वारा व्यवस्था में लगाई गई लागतों तथा उपभोक्ता द्वारा चुकाई गई कीमत के बीच कोई संबंध नहीं है। राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा को संबोधित करने के लिए कृषि विकास के लिए अत्यधिक सब्सिडी वाली बिजली, गरीबों के लिए बिजली आदि प्रदान करने का उद्देश्य इन उपभोक्ताओं के लिए सस्ती कीमतें प्रदान करेगा, जबकि इस उपाय की लागत बाहरी स्रोत, जैसे कि सरकार का बजट या उपभोक्ताओं के अन्य वर्गों से वसूल की जाएगी। भारतीय सांख्यिकी संस्थान द्वारा सुझाए गए क्रॉस-सब्सिडी के विचार ने भी लोकप्रियता हासिल की। ? ? यह वह व्यवस्था है जिसे नवउदारवादी विचारधारा तथा कॉर्पोरेट सत्ता एकाधिकार से प्रभावित विभिन्न शासनों ने इतनी दृढ़ता से उलटने की कोशिश की है। बिजली कर्मचारियों, किसानों और मेहनतकश जनता के दृढ़ प्रतिरोध ने ऐसे प्रयासों को रोक दिया है।

2001 में वाजपेयी सरकार द्वारा लाए गए बिजली विधेयक में कई बदलाव किए गए और 2003 में संसद में केवल 59 सदस्यों की मौजूदगी में पारित होने से पहले इसे आठ बार संशोधित किया गया, यह एक शर्मनाक उपलब्धि थी, जिसकी बराबरी केवल मौजूदा सत्ताधारी सरकार द्वारा कुछ ही मिनटों में रिकॉर्ड संख्या में महत्वपूर्ण कानून पारित करने की आदत से की जा सकती है। टैरिफ विनियमन पर धारा 61 में 2003 अधिनियम में स्पष्ट था कि बिजली उत्पादन, बिजली का संचरण, वितरण और आपूर्ति वाणिज्यिक आधार पर की जाती है

सिद्धांत; टैरिफ धीरे-धीरे बिजली की आपूर्ति की लागत को दर्शाता है और क्रॉस-सब्सिडी को भी कम करता है। इस अधिनियम ने बिजली (आपूर्ति) अधिनियम, 1948, बिजली नियामक आयोग अधिनियम, 1998 को भी रद्द कर दिया। 2007 के बिजली (संशोधन) अधिनियम ने क्रॉस-सब्सिडी को खत्म करने के लिए उपरोक्त अधिनियम में प्रावधान को संशोधित किया और इसे हटा दिया। यह वामपंथी दलों के हस्तक्षेप के आधार पर था जिन्होंने यह सुनिश्चित किया कि यूपीए-ध के साझा न्यूनतम कार्यक्रम में इस संबंध में आश्वासन दिया गया था।

2014 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा के सत्ता में आने के 6 महीने के भीतर ही बिजली उत्पादन, पारेषण और वितरण के मौजूदा परिदृश्य का गहन अध्ययन किए बिना ही एक और मसौदा विधेयक लाया गया। कृषि अधिनियमों और श्रम संहिताओं सहित कई अन्य कानूनों की तरह, जिन्हें एकाधिकार पूंजी के इशारे पर लाया गया था, जबकि आम जनता अभूतपूर्व महामारी और सख्त लॉकडाउन से जूझ रही थी, 17 अप्रैल, 2020 को संशोधित विधेयक को फिर से पेश करके और फिर 8 अगस्त 2022 को बिजली क्षेत्र में भी दरवाजे खोलने की कोशिश की गई।

सार्वजनिक उपयोगिताओं का अनियंत्रित नियंत्रण और निजी संस्थाओं के स्वामित्व में होना, जो अनंत लाभ के विचार से प्रेरित हैं, लाभार्थियों के जीवन में आपदा का एक निश्चित नुस्खा है। कैलिफोर्नियाई बिजली संकट भारत के लिए सबक है, खासकर तब जब नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार बिजली अधिनियम संशोधन और स्मार्ट मीटर के साथ पूरी ताकत से आगे बढ़ रही है। विद्युत उपयोगिता उद्योग पुनर्गठन अधिनियम (विधानसभा विधेयक 1890) जिसे 1890 के रूप में जाना जाता है, 23 सितंबर, 1996 को पारित किया गया था, जिसने बिजली क्षेत्र को विनियमित किया और इसे प्रतिस्पर्धी बनाया। इसके साथ ही एक प्रचार अभियान भी चलाया गया कि यह ऐतिहासिक से कम नहीं है, यह उपभोक्ताओं को कम कीमतों के साथ 'पुरस्कृत' करेगा और निजी निवेश के लिए द्वार खोलेगा, सुस्त अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देगा, रोजगार पैदा करेगा और सचमुच कैलिफोर्निया की सभी समस्याओं का रामबाण इलाज होगा। इसके बाद उपभोक्ताओं के लिए बिजली की कमी और आसमान छूती कीमतें सामने आईं। इस सदी के शुरुआती वर्षों में कैलिफोर्नियाई बिजली संकट ने कैलिफोर्निया के घरों को अंधेरे में और कड़ाके की ठंड में बिना हीटिंग के छोड़ दिया था। बिजली अन्य वस्तुओं से भिन्न है, इसलिए इसे आम जनता द्वारा सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए संग्रहीत नहीं किया जा सकता है; जिससे वे पूरी तरह से एकाधिकार पर निर्भर हो जाते हैं। दो नई निजीकृत कंपनियों पॉवरजेन और नेशनल पावर का बिजली आपूर्ति पर एकाधिकार था। बाजार में उनके हेरफेर के कारण मूल्य अस्थिरता की जांच एकाधिकार और विलय आयोग द्वारा की जा रही थी। एबी 1890 ने मूल्य नियंत्रण को हटा दिया जो 1994 में इन कंपनियों के साथ एक समझौते के हिस्से के रूप में हुआ था। कैलिफोर्निया और अन्य जगहों पर, एकाधिकार का प्रयोग जबकि तथाकथित सुधारों का कथित उद्देश्य प्रतिस्पर्धी होना था, बिजली क्षेत्र में देखा गया है। थोक बिजली बाजार में निजी बिजली उत्पादकों द्वारा एकाधिकार का यह प्रयोग, जहां एक ओर बिजली उपयोगिता वितरण कंपनियों को बेची जाती है और दूसरी ओर निजी सेवा द्वारा खुदरा बाजार में बिजली के अंतिम उपयोगकर्ताओं को बेची जाती है।

दूसरी ओर, बिजली खरीद में एकाधिकार रखने वाली डिस्कॉम का उदय

जनरेटर और जनरेटर द्वारा बाजार में हेरफेर से बहुत अराजक शक्ति पैदा हो सकती है

परिदृश्य। यह बिना कारण नहीं है कि विभिन्न वर्ग चेतावनी दे रहे हैं कि तेजी से हो रहे बदलाव

यह क्षेत्र उपभोक्ताओं के जीवन में अराजकता फैलाएगा।

बिजली सुधारों का विरोध होने के कारण भारत में चालाक शासक वर्ग ने इसे सबसे पहले केंद्र शासित प्रदेशों में लागू करने की कोशिश की। दादर और नगर हवेली में सभी संपत्तियां गुजरात की एक कंपनी टोरेंट को हस्तांतरित कर दी गईं। इस कंपनी ने वित्त वर्ष 2022-23 में शुद्ध लाभ में 371 प्रतिशत की वृद्धि देखी, जो 458.7 करोड़ रुपये से बढ़कर 2164.6 करोड़ रुपये हो गया, जबकि इसकी आय में लगभग 80 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह दावा कैलिफोर्निया में किए गए 'दक्षता में वृद्धि', 'अनुकरण के लिए मॉडल' आदि के दावों के समान है। लक्ष्य केंद्र शासित प्रदेश की डिस्कॉम का वार्षिक राजस्व है, जो लगभग 4,500 करोड़ रुपये है। जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा, ग्रिड प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण और अन्य कारणों में भारी खर्च दिखाते हुए, बोझ बेखबर ग्राहकों पर डाला जा सकता है, जिनके पास तब तक भारी कीमत चुकाने या अंधेरे में डूब जाने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा। महाराष्ट्र में अडानी, चंडीगढ़ में आर.पी. गोयनका समूह और जम्मू-कश्मीर तथा पांडिचेरी में भी बिजली कर्मचारियों और उपभोक्ताओं के संयुक्त संघर्षों द्वारा बिजली को अडानी को सौंपने के ऐसे ही प्रयासों का सफलतापूर्वक विरोध किया गया।

वर्तमान शासन के अंतर्गत हमेशा की तरह संदिग्ध अडानी, अंबानी और टाटा भी बड़े पैमाने पर बिजली क्षेत्र में हैं। अडानी पावर लिमिटेड ने अपनी साइट पर उल्लेख किया है कि यह 'भारत में सबसे बड़ा निजी ताप विद्युत उत्पादक है, जो 13,650 मेगावाट की स्थापित क्षमता के साथ एनटीपीसी लिमिटेड के बाद दूसरे स्थान पर है'। अडानी ग्रीन एनर्जी लिमिटेड (एजीईएल) भी अक्षय ऊर्जा क्षेत्र में सबसे बड़ी कंपनी है, जो 2025 तक पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा और हाइब्रिड बिजली परियोजनाओं सहित 25 गीगावाट का अक्षय ऊर्जा पोर्टफोलियो विकसित कर रही है। रिपोर्टों के अनुसार, वे निजी ताप विद्युत क्षमता का लगभग 22 प्रतिशत, सौर और पवन संयंत्रों की सबसे बड़ी संख्या और भारत के निजी बिजली संचरण का 51 प्रतिशत

नियंत्रित करते हैं। अडानी की मौजूदगी आपूर्ति श्रृंखला के सभी चरणों में है, ताकि वे कोयले पर नियंत्रण से लेकर आम जनता को बिजली उपलब्ध करा सकें - ऑस्ट्रेलिया सहित घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्रोतों से, बंदरगाहों, हवाई अड्डों, बिजली उत्पादन, नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र और वितरण के साथ-साथ ट्रांसमिशन लाइनों पर नियंत्रण। अनिल अंबानी की रिलायंस पावर लिमिटेड और टाटा पावर लिमिटेड कुछ अन्य खिलाड़ी हैं, लेकिन इनमें से किसी के पास ऊपर बताए गए विभिन्न क्षेत्रों पर अडानी की तरह की पकड़ नहीं है। एक दूर का भविष्य जहां थर्मल ऊर्जा को 'ग्रीन' नवीकरणीय ऊर्जा से बदला जा सकता है, वह भी एक ऐसा भविष्य है जहां अडानी खेल के नियम निर्धारित करेंगे। अगली साजिश गरीबों और किसानों को अलग-थलग करने की है। फीडर अलगाव या ग्रामीण फीडरों का अलगाव यह धारणा बनाएगा कि कृषि उपयोगकर्ताओं/किसानों को अनुचित लाभ मिल रहा है। मजदूरों और किसानों के संयुक्त संघर्षों द्वारा उन्हें दिए गए अपमानजनक नुकसानों की श्रृंखला से परेशान होकर, वे अब अपनी सबसे चतुर चाल 'स्मार्ट मीटर' लेकर आए हैं जो प्रीपेड मीटर की शुरुआत करेगा। राज्यों को दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना (DDUGJY), एकीकृत विद्युत विकास योजना (IPDS), पुनर्गठित त्वरित विद्युत विकास एवं सुधार कार्यक्रम (R-APDRP) जैसी विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत सब्सिडी/आवंटन में कटौती की धमकी दी जा रही है, यदि वे इसका अनुपालन नहीं करते हैं। एक झटके में 26 करोड़ घरों का वास्तविक समय डेटा इन बड़े एकाधिकारियों के नियंत्रण में आ जाएगा, जो सत्ताधारी वर्ग को एहसान वापस करेंगे, जिन्होंने उनका पक्ष लिया। मीटर लगाने के लिए हर 6 साल में कम से कम 2 लाख करोड़ की भारी लागत राज्यों और उपभोक्ताओं पर डाली जाएगी, जबकि बिजली दिग्गज अपनी तिजोरियाँ भरेंगे। यदि प्रीपेड मीटर शून्य हो जाते हैं, तो इससे तत्काल बिजली संकट पैदा हो जाएगा।

कनेक्शन काटने और दोबारा जोड़ने पर 500 रुपये का जुर्माना। कल्पना कीजिए कि गर्मी या सर्दी के मौसम में या फिर सूखे के मौसम में किसानों को अपनी फसलों की सिंचाई करनी पड़ रही हो। जैसे कैलिफोर्निया के लोगों को कड़ाके की ठंड में बिजली नहीं दी गई, वैसे ही सिर्फ मुनाफा कमाने के इरादे से चलने वाली कंपनियां किसी और चीज की परवाह नहीं करतीं और कोई बड़ा कदम उठा सकती हैं। उपभोक्ताओं को सचमुच भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। भाजपा के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार का लक्ष्य अप्रैल 2025 तक सभी कृषि फीडरों को अलग करना है। उस समयसीमा को पूरा करने के लिए वह डराने-धमकाने का सहारा ले रही है और उन राज्यों के लिए आवंटन और सब्सिडी में कटौती करने की धमकी दे रही है जो ऐसा नहीं करते। किसानों के लिए इसका क्या मतलब होगा? सभी ट्यूबवेल और सिंचाई मोटरों को स्मार्ट मीटर से जोड़ा जाएगा। अगर 10 रुपये प्रति यूनिट की दर से 6 घंटे में 34 यूनिट इस्तेमाल की जाती हैं, तो इसकी कीमत 340 रुपये प्रति दिन होगी या 7.5 एचपी पंप के लिए 10,200 रुपये प्रति माह। मीटर बदलने के लिए हर 6 साल में एक बार लगभग 15,000 रुपये का आवर्ती खर्च भी उपभोक्ताओं पर पड़ेगा। क्रॉस-सब्सिडी, कृषि और गरीबों के लिए मुफ्त बिजली का पूरा विचार हमेशा के लिए खत्म हो जाएगा। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश में किसान उग्र हो गए हैं और स्मार्ट मीटर उखाड़ फेंक रहे हैं। उपभोक्ताओं के सामने डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर जैसे कई तरह के प्रलोभन रखे जाएंगे, जैसा कि आंध्र प्रदेश सरकार कर रही है। विजयनगरम के किसानों ने बताया है कि उनके 3 एचपी पंप के लिए बिल 7500 रुपये प्रति माह तक आ रहे हैं, लेकिन वाईएसआरसीपी सरकार दावा कर रही है कि किसानों को चिंता करने की जरूरत नहीं है क्योंकि यह राशि सीधे उनके खातों में ट्रांसफर की जाएगी। ऐसे प्रलोभनों में पड़ना किसानी और देश की खाद्य सुरक्षा के लिए मौत की घंटी होगी। यह कुछ ऐसा है जिसका विरोध करने के लिए सभी वर्गों को एकजुट होना चाहिए। केरल की एलडीएफ सरकार ने टोटेक्स मॉडल (कुल व्यय मॉडल) स्मार्ट मीटर का विरोध करके रास्ता दिखाया है और जोर देकर कहा है कि वे किसानों और उपभोक्ताओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं होने देंगे। यह भारतीय ट्रेड यूनियनों के केंद्र और भारतीय विद्युत कर्मचारी महासंघ के समय पर हस्तक्षेप का भी परिणाम था, जिन्होंने नौकरशाही के उस झांसे को उजागर किया जो केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित रोड-मैप पर चुपके से आगे बढ़ने की कोशिश कर रही थी। प्रतिरोध के ऐसे और भी कई केंद्र हो सकते हैं। अंधकार और विनाश के खिलाफ; छल और कॉर्पोरेट लूट के खिलाफ, आइए हम एकजुट हों।

(लेखक अखिल भारतीय किसान सभा के राष्ट्रीय सचिव हैं)

स्मार्ट-मीटर की मार्फत बिजली का निजीकरण

सुनील कुमार

बिजली के निजीकरण की ताजा तरकीब है, स्मार्ट-मीटर। इसमें ठीक मोबाइल फोन की तरह जरूरत-भर बिजली को रीचार्ज करके उपयोग किया जाएगा। कहा जा रहा है कि इससे बिजली की चोरी रोकी जा सकेगी, लेकिन क्या यह तरकीब आम, गरीब उपभोक्ताओं के हाथ से बिजली छीनने की तरकीब नहीं होगी? इसे आम नागरिक किस तरह से देख रहा है? बता रहे हैं, सुनील कुमार।

भारत में बिजली एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है। जिस तरह रोटी, कपड़ा, मकान की जरूरत है उसी तरह से बिजली की जरूरत हो गई है। बिजली नहीं रहने से घर में रोशनी नहीं होती, मोबाईल से लेकर टीवी,पंखा, कूलर, फ्रिज कुछ नहीं चल सकता। इसको बढ़ावा देने का काम भारत सरकार ने किया है। वह राशन दुकान पर मिलने वाले मिट्टी के तेल को बहुत पहले बंद कर चुकी है जिससे शहरों से लेकर सुदूर ग्रामीण इलाकों में भी रोशनी के लिए लोगों को बिजली पर निर्भर होना पड़ता है।

खाना बनाने के लिए लकड़ी के बाद केरोसिन ऑयल था जिससे लोग स्टोव पर खाना बना लिया करते थे। सरकार ने 2019 में राशन की दुकानों पर केरोसिन की बिक्री पूरी तरह से बंद कर दी और उस पर मिलने वाली सब्सिडी को खत्म कर दिया। केरोसिन ऑयल छीनकर शहर से गांव तक लोगों को बिजली पर निर्भर बना दिया गया।

बिजली को बढ़ावा देने के लिए 25 सितम्बर, 2017 को प्रधानमंत्री ने दीनदयाल ऊर्जा भवन में 'प्रधानमंत्री सहज बिजली हर घर योजना- सौभाग्य' का शुभारंभ किया था। इसका उद्देश्य हर घर तक बिजली पहुंचाना है। इस योजना के तहत 31 दिसम्बर 2018 तक राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को घरेलू विद्युतीकरण कार्य पूरा करना था जिससे कि 2019 तक हर घर में बिजली पहुंचाई जा सके।

इस योजना की विशेषता बताते हुए सरकार ने कहा है कि यह केरोसिन का विकल्प है। इससे सभी इच्छुक घरों तक बिजली की पहुंच, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, संचार में सुधार, सार्वजनिक सुरक्षा में सुधार, नौकरी के अवसरों में वृद्धि, दैनिक कार्यों में, विशेषकर महिलाओं के लिए बेहतर गुणवत्ता मिलेगी। सरकार के तेजी से बिजली उत्पादन करने के चक्कर में एक नवम्बर, 2017 को 'एनटीपीसी' के 'ऊंचाहार प्लांट' में बॉयलर विस्फोट में तीस से अधिक कर्मचारी, इंजीनियर मारे गये और करीब 200 घायल हो गये।

सेंधमारी से सुरक्षित नहीं है, 'डाटा' की पूंजी

सरकार ने 8 अगस्त, 2022 को 'विद्युत (संशोधन) विधेयक, 2022' को लोकसभा में पेश कर पास भी करवा लिया। इससे बिजली का निजीकरण आसान हो गया। इससे पहले सरकार ने एक दिसम्बर, 2021 को 'संयुक्त किसान मोर्चा' (एसकेएम) को पत्र लिखकर आश्वसान दिया था कि 'बिजली बिल में किसान पर असर डालने वाले प्रावधानों पर पहले सभी स्टेकहोल्डर्स/'एमकेएस' से चर्चा होगी। चर्चा के बाद ही बिल संसद में पेश किया जायेगा। ' सरकार बिजली के निजीकरण की जल्दबाजी में किसानों से की गई लिखित बातों से भी मुकर गई और बिना चर्चा के संसद में बिल पेश कर दिया। इसके विरोध में बिजली विभाग के कर्मचारियों ने कई राज्यों में प्रदर्शन किया जिसमें उत्तरप्रदेश के कर्मचारियों का मार्च 2023 में 73 घंटे का आन्दोलन प्रमुख था।

सरकार ने बिजली कम्पनियों को लाभ पहुंचाने के लिए 'प्रधानमंत्री सहज बिजली हर घर योजना- सौभाग्य' में सभी तरह के इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिए भारी धन मुहैय्या कराया। बिजली कम्पनियों की आसानी के लिए स्मार्ट-मीटर देश भर में लगाये जाने लगे जिसका काम सरकार ने निजी कम्पनियों को ही दे दिया। स्मार्ट-मीटर से लोगों पर बिजली का बोझ बढेगा, क्योंकि स्मार्ट-मीटर स्पार्क होने वाली जगह को भी यूनिट में जोड़ देगा, यहां तक बोर्ड में लगने वाला इंडीकेटर भी जोडेगा। भविष्य में इसको मोबाईल फोन की तरह बनाया जा सकता है, यानि पहले रीचार्ज करो फिर उपयोग करो। इससे रोजगार बढ़ने की बजाय पहले से बढ़ती बेरोजगारी में इजाफा होगा।

हम जानते हैं कि भारत की बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है जहां फसल होने के समय ही उनके पास पैसा आता है। ऐसे में उन घरों में बिजली नहीं मिल पायेगा। इसका और भी प्रभाव होगा। 'उत्तरप्रदेश पॉवर कॉरपोरेशन' के प्रबंधन ने आईटी विशेषज्ञों की कमेटी बनकार स्मार्ट

बिजली मीटर की जांच कराई तो सभी वितरण-निगमों की ओर से लगाए गए मीटरों में खामियां पाई गईं। मीटर गलत रिकॉर्ड करने के साथ ही आरटीसी दो घंटे में ड्रिप कर रही है जिसका असर बिलिंग पर पड़ेगा। कॉरपोरेशन के वाणिज्य निदेशक निधि कुमार नारंग ने मीटर लगाने वाली कम्पनी जीएमआर, इटली स्मार्ट और पोलरिस को नोटिस जारी किया है।

आर्टिफीशियल इंटेलीजेंस : इंसान से आगे मशीन

हम मोबाईल के उदाहरण से इसको समझ सकते हैं कि किस तरह से मोबाईल के रिचार्ज को कम्पनियां बढ़ाती जा रही हैं। आपका नेटवर्क रहे या नहीं, उनका दिन कम होता जाता है। पहले सरकार ने हर काम के लिए आपको मोबाईल पर निर्भर किया। बैंक का काम हो, बच्चों को फार्म भरना हो, स्कूल में दाखिला हो या कोई भी काम आपके मोबाईल पर ओटीपी आता है जिसके कारण आपको हर महिना करीब 300 रू. चार्ज कराना होता है। इसी तरह घरों तक बिजली पहुंचाकर लोगों से बिजली के सामान पंखा, कूलर, टीवी इत्यादि के सामान खरीदकर पूंजीपतियों को लाभ पहुंचाया गया।

'विद्युत (संशोधन) विधेयक 2022' की मार्फत बिजली का निजीकरण कर लोगों पर बिजली के बोझ लादे जाने की तैयारी है। इस बात को जनता समझ गई है और देश में कई जगह स्मार्ट-मीटर का विरोध हो रहा है। पश्चिमी उत्तरप्रदेश में लोगों ने मेरठ जिला कार्यालय में जाकर विरोध जताया तो बिहार में 'राष्ट्रीय जनता दल' ने स्मार्ट-मीटर को मुद्दा बनाया हुआ है। उड़ीसा के बरगढ़ जिले के पदमपुर में 8 नवम्बर को स्मार्ट-मीटर के खिलाफ 'संयुक्त कृषक संगठन' द्वारा 'कृषक गर्जन समावेश' का आयोजन किया गया। 'कृषक गर्जन समावेश' में जानकारी दी गई कि उड़ीसा में 15000 से अधिक स्मार्ट-मीटर उखाड़कर ग्रिड कार्यालय और 'टीपीडब्ल्यूओडीएल' के कार्यालय के सामने फेंक दिया। लोगों ने बताया की उपभोक्ताओं और विशेष रूप से किसानों की सहमति के बिना स्मार्ट-मीटर लगाने से भारी आक्रोश है। स्मार्ट-मीटर का विरोध करने वाले किसान नेताओं पर सरकार झूठे केस लगा रही है। किसान नेता रमेश महापात्रा को आदतन अपराधी बता रही है जिसका उड़ीसा हाईकोर्ट बार एसोसिएशन और बरगढ़ जिला बार एसोसिएशन ने विरोध किया है। इस आन्दोलन का असर यह रहा कि बरगढ़ जिला कलेक्टर को घोषणा करना पड़ी कि बकाया राशि के कारण किसी की बिजली नहीं काटी जायेगी। इस लड़ाई को मजबूती देने के लिए 'एसकेएम' से पी. कृष्णाप्रसाद और 'किसान-मजदूर परिषद' से अफलातून और राजेन्द्र चौधरी ने भाग लिया। बिजली का मुद्दा इतना महत्वपूर्ण है कि सभी चुनावी पार्टियां, खासकर राष्ट्रीय स्तर की भाजपा, कांग्रेस और आप हर चुनाव में 300 यूनिट बिजली फ्री देने का वादा कर रही है। एक तरफ बिजली फ्री देने का वादा तो दूसरी तरफ सरकार बनने के बाद बिजली के निजीकरण और स्मार्ट मीटर लगाकर जनता की जेब काटने की योजना बनाई जा रही है। (सप्रेसस्मार्ट-मीटर की मार्फत बिजली का निजीकरण बिजली के निजीकरण की ताजा तरकीब है, स्मार्ट-मीटर। इसमें ठीक मोबाइल फोन की तरह जरूरत-भर बिजली को रीचार्ज करके उपयोग किया जाएगा। कहा जा रहा है कि इससे बिजली की चोरी रोकी जा सकेगी, लेकिन क्या यह तरकीब आम, गरीब उपभोक्ताओं के हाथ से बिजली छीनने की तरकीब नहीं होगी? इसे आम नागरिक किस तरह से देख रहा है?

भारत में बिजली एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है। जिस तरह रोटी, कपड़ा, मकान की जरूरत है उसी तरह से बिजली की जरूरत हो गई है। बिजली नहीं रहने से घर में रोशनी नहीं होती, मोबाईल से लेकर टीवी,पंखा, कूलर, फ्रिज कुछ नहीं चल सकता। इसको बढ़ावा देने का काम भारत सरकार ने किया है। वह राशन दुकान पर मिलने वाले मिट्टी के तेल को बहुत पहले बंद कर चुकी है जिससे शहरों से लेकर सुदूर ग्रामीण इलाकों में भी रोशनी के लिए लोगों को बिजली पर निर्भर होना पड़ता है।

खाना बनाने के लिए लकड़ी के बाद केरोसिन ऑयल था जिससे लोग स्टोव पर खाना बना लिया करते थे। सरकार ने 2019 में राशन की दुकानों पर केरोसिन की बिक्री पूरी तरह से बंद कर दी और उस पर मिलने वाली सब्सिडी को खत्म कर दिया। केरोसिन ऑयल छीनकर शहर से गांव तक लोगों को बिजली पर निर्भर बना दिया गया।

बिजली को बढ़ावा देने के लिए 25 सितम्बर, 2017 को प्रधानमंत्री ने दीनदयाल ऊर्जा भवन में 'प्रधानमंत्री सहज बिजली हर घर योजना- सौभाग्य' का शुभारंभ किया था। इसका उद्देश्य हर घर तक बिजली पहुंचाना है। इस योजना के तहत 31 दिसम्बर 2018 तक राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को घरेलू विद्युतीकरण कार्य पूरा करना था जिससे कि 2019 तक हर घर में बिजली पहुंचाई जा सके।

इस योजना की विशेषता बताते हुए सरकार ने कहा है कि यह केरोसिन का विकल्प है। इससे सभी इच्छुक घरों तक बिजली की पहुंच, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, संचार में सुधार, सार्वजनिक सुरक्षा में सुधार, नौकरी के अवसरों में वृद्धि, दैनिक कार्यों में, विशेषकर महिलाओं के लिए बेहतर गुणवत्ता मिलेगी। सरकार के तेजी से बिजली

उत्पादन करने के चक्कर में एक नवम्बर, 2017 को 'एनटीपीसी' के 'ऊंचाहार प्लांट' में बॉयलर विस्फोट में तीस से अधिक कर्मचारी, इंजीनियर मारे गये और करीब 200 घायल हो गये।

सेंधमारी से सुरक्षित नहीं है, 'डाटा' की पूंजी

सरकार ने 8 अगस्त, 2022 को 'विद्युत (संशोधन) विधेयक, 2022' को लोकसभा में पेश कर पास भी करवा लिया। इससे बिजली का निजीकरण आसान हो गया। इससे पहले सरकार ने एक दिसम्बर, 2021 को 'संयुक्त किसान मोर्चा' (एसकेएम) को पत्र लिखकर आश्वसान दिया था कि 'बिजली बिल में किसान पर असर डालने वाले प्रावधानों पर पहले सभी स्टेकहोल्डर्स/'एमकेएस' से चर्चा होगी। चर्चा के बाद ही बिल संसद में पेश किया जायेगा। ' सरकार बिजली के निजीकरण की जल्दबाजी में किसानों से की गई लिखित बातों से भी मुकर गई और बिना चर्चा के संसद में बिल पेश कर दिया। इसके विरोध में बिजली विभाग के कर्मचारियों ने कई राज्यों में प्रदर्शन किया जिसमें उत्तरप्रदेश के कर्मचारियों का मार्च 2023 में 73 घंटे का आन्दोलन प्रमुख था।

सरकार ने बिजली कम्पनियों को लाभ पहुंचाने के लिए 'प्रधानमंत्री सहज बिजली हर घर योजना- सौभाग्य' में सभी तरह के इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिए भारी धन मुहैय्या कराया। बिजली कम्पनियों की आसानी के लिए स्मार्ट-मीटर देश भर में लगाये जाने लगे जिसका काम सरकार ने निजी कम्पनियों को ही दे दिया। स्मार्ट-मीटर से लोगों पर बिजली का बोझ बढेगा, क्योंकि स्मार्ट-मीटर स्पार्क होने वाली जगह को भी यूनिट में जोड़ देगा, यहां तक बोर्ड में लगने वाला इंडीकेटर भी जोडेगा। भविष्य में इसको मोबाईल फोन की तरह बनाया जा सकता है, यानि पहले रीचार्ज करो फिर उपयोग करो। इससे रोजगार बढ़ने की बजाय पहले से बढ़ती बेरोजगारी में इजाफा होगा।

हम जानते हैं कि भारत की बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है जहां फसल होने के समय ही उनके पास पैसा आता है। ऐसे में उन घरों में बिजली नहीं मिल पायेगा। इसका और भी प्रभाव होगा। 'उत्तरप्रदेश पॉवर कॉरपोरेशन' के प्रबंधन ने आईटी विशेषज्ञों की कमेटी बनकार स्मार्ट बिजली मीटर की जांच कराई तो सभी वितरण-निगमों की ओर से लगाए गए मीटरों में खामियां पाई गईं। मीटर गलत रिकॉर्ड करने के साथ ही आरटीसी दो घंटे में ड्रिप कर रही है जिसका असर बिलिंग पर पड़ेगा। कॉरपोरेशन के वाणिज्य निदेशक निधि कुमार नारंग ने मीटर लगाने वाली कम्पनी जीएमआर, इटली स्मार्ट और पोलरिस को नोटिस जारी किया है।

हम मोबाईल के उदाहरण से इसको समझ सकते हैं कि किस तरह से मोबाईल के रिचार्ज को कम्पनियां बढ़ाती जा रही हैं। आपका नेटवर्क रहे या नहीं, उनका दिन कम होता जाता है। पहले सरकार ने हर काम के लिए आपको मोबाईल पर निर्भर किया। बैंक का काम हो, बच्चों को फार्म भरना हो, स्कूल में दाखिला हो या कोई भी काम आपके मोबाईल पर ओटीपी आता है जिसके कारण आपको हर महिना करीब 300 रू. चार्ज कराना होता है। इसी तरह घरों तक बिजली पहुंचाकर लोगों से बिजली के सामान पंखा, कूलर, टीवी इत्यादि के सामान खरीदकर पूंजीपतियों को लाभ पहुंचाया गया।

'विद्युत (संशोधन) विधेयक 2022' की मार्फत बिजली का निजीकरण कर लोगों पर बिजली के बोझ लादे जाने की तैयारी है। इस बात को जनता समझ गई है और देश में कई जगह स्मार्ट-मीटर का विरोध हो रहा है। पश्चिमी उत्तरप्रदेश में लोगों ने मेरठ जिला कार्यालय में जाकर विरोध जताया तो बिहार में 'राष्ट्रीय जनता दल' ने स्मार्ट-मीटर को मुद्दा बनाया हुआ है। उड़ीसा के बरगढ़ जिले के पदमपुर में 8 नवम्बर को स्मार्ट-मीटर के खिलाफ 'संयुक्त कृषक संगठन' द्वारा 'कृषक गर्जन समावेश' का आयोजन किया गया। 'कृषक गर्जन समावेश' में जानकारी दी गई कि उड़ीसा में 15000 से अधिक स्मार्ट-मीटर उखाड़कर ग्रिड कार्यालय और 'टीपीडब्ल्यूओडीएल' के कार्यालय के सामने फेंक दिया। लोगों ने बताया की उपभोक्ताओं और विशेष रूप से किसानों की सहमति के बिना स्मार्ट-मीटर लगाने से भारी आक्रोश है। स्मार्ट-मीटर का विरोध करने वाले किसान नेताओं पर सरकार झूठे केस लगा रही है। किसान नेता रमेश महापात्रा को आदतन अपराधी बता रही है जिसका उड़ीसा हाईकोर्ट बार एसोसिएशन और बरगढ़ जिला बार एसोसिएशन ने विरोध किया है। इस आन्दोलन का असर यह रहा कि बरगढ़ जिला कलेक्टर को घोषणा करना पड़ी कि बकाया राशि के कारण किसी की बिजली नहीं काटी जायेगी। इस लड़ाई को मजबूती देने के लिए 'एसकेएम' से पी. कृष्णाप्रसाद और 'किसान-मजदूर परिषद' से अफलातून और राजेन्द्र चौधरी ने भाग लिया। बिजली का मुद्दा इतना महत्वपूर्ण है कि सभी चुनावी पार्टियां, खासकर राष्ट्रीय स्तर की भाजपा, कांग्रेस और आप हर चुनाव में 300 यूनिट बिजली फ्री देने का वादा कर रही है। एक तरफ बिजली फ्री देने का वादा तो दूसरी तरफ सरकार बनने के बाद बिजली के निजीकरण और स्मार्ट मीटर लगाकर जनता की जेब काटने की योजना बनाई जा रही है। (सप्रेस)

जल–जंगल–जमीन के लड़ाई के साथ एक हो खनन का विरोध करो–आदिवासियों का साथ दो

सुनील कुमार

भारत के सुदूर पहाड़ी, जंगली क्षेत्रों में आदिवसी निवास करते हैं। ये देश की कुल आबादी का 8.6 प्रतिशत, यानी 10 करोड़ है, जो भारत के 22 हजार गांव में निवास करती है। भारत सरकार के दिये गये आंकड़ों के अनुसार 90 जिले या 890 ब्लॉक में 50 प्रतिशत आदिवासी रहते हैं। 705 तरह के आदिवासियों के समूह हैं। इसमें 75 ऐसे समूह हैं जिनकी संख्या घटती जा रही है। पहले से ही हाशिये पर जी रहे इस समूदाय को भारत में 'विकास' के लिए बली का बकरा बनाया गया है। बांध निर्माण में विस्थापित होने वाले लोगों में 40 प्रतिशत संख्या आदिवासियों की है। भारत में बढ़ते शहरीकरण के लिए एल्युमिनियम, स्टील, कोयला जैसे खनिज की जरूरत को पूरा करने के लिए इन्हीं आदिवासियों को उजाड़ा जाता रहा है। रिपोर्ट ऑफ द हाई लेवल कमिटी ऑन सोसियो–इकनॉमिक, हैल्थ एंड एजुकेशनल स्टेटस् ऑफ ट्राइब्ल कम्युनिटीज ऑफ इंडिया नाम की रिपोर्ट में यह बात सामने आई है कि **देश के 25 फीसदी आदिवासियों को अपने पूरे जीवनकाल में कम से कम एक बार विकास परियोजनाओं के चलते विस्थापन झेलना पड़ा है।** जबकि आदिवासियों के पुनर्वास से संबंधित सरकार नमारा नियुक्त विशेषज्ञ समिति ने बताया कि विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित आदिवासियों की संख्या 47 फीसदी हैं। जिस समुदाय की आबादी 8.6 प्रतिशत है और विकास में उनकी कुर्बानी 40 प्रतिशत है, आज उसी को मारा जा रहा है और झूठे केसों में डालकर जेल भेजा जा रहा है।

आदिवासी इलाकों में ओड़िसा, झारखंड, छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के नाम प्रमुखता से आते हैं क्योंकि यह इलाका खनिज भंडारों से भरा हुआ है। तीन राज्यों में देश के 70 प्रतिशत कोल भंडार, 68 प्रतिशत बॉक्साइट का भंडार हैं। इन्हीं में से एक राज्य ओड़िसा है, जहां के बाक्साइट के 50 प्रतिशत भंडार और देश का दूसरा सबसे बड़ा कोयला भंडार है। कोयला, बाक्साइट के अलावा क्रोमाइट का 96 प्रतिशत, निकल ओर का 93 प्रतिशत, पीजीएम मेटल का 68 प्रतिशत, आयरन ओर का 39 प्रतिशत है। इस के अलावा टीन, चूना पत्थर, डेलोमाइट, सीसा, सोना, हीरा अन्य खनिज सम्पदा से भरपूर राज्य है। वित्तीय वर्ष 2023–24 में 'मिनरल कंजरवेशन एंड डेवलपमेंट रूल्स' के तहत हुए उत्पादन बताता है कि ओड़िसा 64,588 करोड़ रू. का खनिज सम्पदा का उत्पादन किया गया, जो पूरे भारत के खनिज उत्पादन का 46 प्रतिशत है। छत्तीसगढ़ 19,598 करोड़ रू. का उत्पादन किया, जिसका योगदान देश स्तर पर करीब 14 प्रतिशत का है। यह आंकड़ा खनिज के क्षेत्र में उड़ीसा की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है। खनिज सम्पदा से समृद्ध राज्य होने के बावजद ओड़िसा की गिनती गरीब राज्य में होती है। खनन का लाभ कुछ धन्नासेठों और भ्रष्ट अधिकारियों–मंत्रियों के हाथों में चला जाता है। जनता के हिस्से आता है तो विस्थापन और प्रदूषण। भारत नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) ने अपने ऑडिट में पाया है कि भ्रष्टाचार के कारण 22,392.51 करोड़ रू के राजस्व का नुकसान सरकार को हुआ है।

देश के 'विकास' में इतना योगदान देने वाले राज्यों से खबरें आती हैं कि आम की गुठली खाने से आदिवासी इलाकों में मौतें हुई हैं। यहां से देशी–विदेशी पूंजीपतियों से कारखाने लगाने की सरकार के साथ समझौतें की खबरें आती हैं और उसके साथ ही खबरें आती हैं कि विकास के लिए इतने लोगों को वहां से विस्थापित किया जायेगा। विस्थापन का प्रतिरोध करने पर गोली चालन से मौतें की खबरें भी आती हैं, जैसा कि 16 दिसम्बर, 2000 को काशीपुर के माइकंच में तीन आदिवासियों की मौत, तो 2 जनवरी, 2006 को कलिंगानगर में 13 आदिवासियों की मौत की खबर सुनने को मिलती है। इसके अलावा इन क्षेत्रों में आये दिन 'मुठभेड़' में मरने वाले और जेल जाने वालों में आदिवासियों के ही नाम होते हैं। देश के 'विकास' में जिन लोगों को सबसे ज्यादा विस्थापन की मार झेलनी पड़ी, वही सबसे ज्यादा बर्बरता सहने को विवश हैं। धनपिपाशुओं नमारा खनिज सम्पदा की लूट की स्पीड जितनी तेज होती है, उसी स्पीड से इन पर बर्बर हमले किये जाते हैं। हाल ही में ऐसे ही एक लूट की तैयारी रायगड़ा जिले के तीजीमाली (सीजीमाली) इलाके में चल रही है। वेदांता कम्पनी के हम सभी ने नाम सुना है, जिसको नियमगिरि आन्दोलन के कारण एक झटका लग चुका है। खनन क्षेत्र के मुनाफे को देखते हुए अदानी भी 'मुंद्रा एल्युमीनियम लिमिटेड' के नाम से खनन क्षेत्र में उतरा है, जो कि दिसम्बर 2021 से गुजरात में रजिस्ट्रड है। दो साल पुरानी कम्पनी 'म्रुंदा एल्युमीनयम लिमिटेड' (एमएएल) को कोरापुट जिले के बोलीदाता में 22 मिलियन टन बॉक्साइट भंडार वाला खनन क्षेत्र मिला हुआ है। अदानी जैसे बड़े पूंजीपतियों की निगाह तीजीमाली के कुटरूमाली पर लगी थी, जो उनको मिल चुका है। इसमें 128 मिलियन टन बॉक्साइट का भंडार है, जो कि 7,01.8 हेक्टेअयर में फैला हुआ है। इसके

अलावा उसके पास ही माजनमाली बॉक्सइट भी 'एमएएल' को मिलने की बात कही जा रही है।

दमन का नया केन्द्र

पूंजीपतियों (धन पिपाशुओं) नमारा कलिंगनगर, नियमगिरि, जगतसिंहपुर (पोस्को), नारयणपटना, काशीपुर के बाद निगाह रायगड़ा जिले के तीजीमाली, कुटरूमाली और माजनमाली पर है। यहां पर बॉक्साइट का भंडार बड़ी मात्रा में है। कुटरू और माजनमाली अदानी की कम्पनी 'मुद्रा एल्युमीनयम लिमिटेड' को दिया जा चुका है, वहीं तीजीमाली को वेदांत कम्पनी को दिया गया है। एक कर्मचारी (नाम नहीं बताने की शर्त पर) ने बताया कि फारेस्ट विभाग के पास अदानी की तरफ से पूरे रायगड़ा की सर्वे के लिए आदेश आया है, जिसका MR नम्बर है क्यू आर–124/123। इस तरह अदानी की निगाह न केवल एक दो पहाड़ी से बाक्साइट निकालने का है, उसकी निगाह तो पूरे खदान पर है।

तीजीमाली में लोगों नमारा विरोध किया जा रहा है समाजवादी जन परिषद के महासचिव लिंगराज आजाद बताते हैं कि ''तीजीमाली, कुटरूमाली और माजनमाली को 23 साल की लीज पर वेदांता और अदानी को दिया जा चुका है।'' विपक्ष में रहते हुए भाजपा नेता भृगु बक्शीपात्रा ने कहा, ''जो लोग लोकतांत्रिक तरीके से सवाल पूंछेंगे या विरोध करेंगे, उन पर झूठे मामले दर्ज किए जाएंगे और उन्हें जेल भेजा जाएगा। कोंडिंगामी में जो कुछ हो रहा था, वही वेदांता नमारा तीजीमाली में दोहराया जा रहा है। अराजकता को किसी भी हालत में बर्दाश्त नहीं किया जाएगा।'' सत्ता में आने के बाद बीजेपी का सुर बदल गया और जोर–शोर से खनिज सम्पदा को अदानी जैसी कम्पनियों को देने के लिए सर्वे कराया जा रहा है।

आजाद का कहना है कि ''कम्पनियां ग्राम सभा की फर्जी मीटिंग करवाती हैं। जो लोग मर चुके हैं उनके भी हस्ताक्षर होते हैं। जो बच्चे पढ़ लिख नहीं सकते, उनके भी अंग्रेजी में हस्ताक्षर हैं सरकार के ग्राम सभा में।'' सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार को वन अधिकार अधिनियम–2006 के तहत नियमगिरि ग्राम सभा आयोजित करने का आदेश दिया, तो चयनित गांव के लोगों ने खनन के खिलाफ सर्वसम्मति से फैसला दिया। इससे वेदांता कम्पनी को बड़ा धक्का लगा। तीजीमाली वेदांता के लिए महत्वपूर्ण है, जिसके पास लांजीगढ़ में 2 मिलियन टन प्रतिवर्ष क्षमता का एल्युमीना रिफाइनरी संयत्र है। नियमगिरि खानन परियोजना सफल न होने के बाद कम्पनी को आयात पर निर्भर रहना पड़ा रहा है और करखाने को कम क्षमता पर चलाना पड़ रहा है। तीजीमाली के पास 311 मिलियन टन बाक्साइट का भंडार है, जो कई वर्षों तक चल सकता है। यही कारण है कि वेदांता तीजीमालीको उड़ीसा सरकार से 23 साल के लीज पर ले लिया।

आजाद का कहना है कि ''हमको विस्थापित करके कहीं भेज सकते हो। हमारे साथ पशु–पक्षी, पेड़ आदि रहते हैं, जिसको हम परिवार के सामान मानते हैं तो उनको कैसे विस्थापित करेंगे। जल–जंगल–जमीन हमारी आजीविका है। मिट्टी से हमारे पुरखा जीते आये हैं। नौकरी दोगे तो एक पीढ़ी भी नहीं चल सकता है, हम तो इसी वातावरण के साथ पुरखों से जीते आये हैं। आदिवासी पेड़–पौधे, नदी, पहाड़ को पूजते हैं। धरती को मां के रूप में, पहाड़ को पिता के रूप में मानते हैं।'' इसी बात को कांटामाल की 70 वर्षीय धनमत माझी दुहराती है–''बचपन से ही हमें अपने खेतों में चावल उगाने के लिए कभी पानी की कमी का समाना नहीं करना पड़ा। तीजीमाली से दर्जनों धाराएं बहती हैं, मानो पहाड़ी ही हमारे गांव की रखवाली कर रही हो। हम बिना किसी बाहरी मद्द के एक साल तक खुद का पेट भरने लायक भोजन उगा लेते हैं।'' तीजीमाली, कुटरूमाली और माजनमाली में करीब 200 झरने हैं जिससे एक छोटी नदीनुमा आसपास खेतों को सिंचित करने का काम करती है।

सामाजिक कार्यकर्ता लक्ष्मण नायक कहते हैं कि **''बापलीमली में खनन हो रहा है। वहां पर जिन लोगों की घर–जमीन खनन में गया, उनको भी काम नहीं दिया जा रहा है। उनको दूसरे भाहर में जाना पड़ता है। कुछ काम मिल भी जाता है, तो 100–200 रू. दिहाड़ी दी जाती है। लोकल युवक, युवतियां काम के लिए जाते हैं तो उनको कम्पनी के अंदर भी नहीं जाने नहीं दिया जाता है। वेंदांता को आये 20 साल हो गये, स्थानीय लोगों को रोजगार नहीं मिला।** पुलिस दमन इतना ज्यादा है कि उन पर झूठा आरोप लगाकर वह जेल में डाल देता है। जो पढ़ रहे हैं उन पर भी केस है। 'मुंद्रा' नाम से अदानी का कम्पनी है। पहले से लोगों पर झूठा केस लगा कर 22 लोग को जेल में डाल दिया है। 12 अगस्त, 2023 से लोगों को जबरदस्ती उठाने लगे।''

लक्ष्मण नायक सवाल करते हैं कि दिल्ली में प्रदूषण के एक दिन **दीपावली को पटाखे चलाने पर सुप्रीम कोर्ट प्रतिबंध लगा देता है तो क्या ओड़िसा के लोगों का जीने का अधिकार नहीं है?यहां इतना बलास्ट होता है जिससे छोटे बच्चों, गर्भवती महिलाओं पर असर पड़ता है।** हमारा भी तो जीवन है। विकास के नाम पर विनाश किया जा रहा है, प्रदूषण बहुत बढ़ गया है। प्रदूषण फैलने से जानवरों पशु, पक्षियों पर असर पड़ रहा है, झरना है वह खत्म हो रहे हैं, झरने के तहत जो जीव जन्तु, मछली है उनका भी तो जीने का अधिकार है। आर्टिकल 21 जीने का अधिकार तो देता है, लेकिन जीने की क्वालिटी तो होना चाहिए!''

नई दिल्ली में रहने वाले भू–वैज्ञानिक श्रीधर राममूर्ति चेतावनी देते हैं कि–"लोग बॉक्साइट खनन के डाउनस्ट्रीम प्रभाव को पहचानने में विफल रहते हैं। समय के साथ, खेती निस्संदेह प्रभावित होगी।" वे बताते हैं कि अगर कोरापुट जिले में दमनजोड़ी क्षेत्र (नाल्को

का खनन क्षेत्र) का अध्ययन किया जाए, तो स्थानीय लोग कहेंगे कि कुछ झरने गायब हो गए हैं। "पूर्वी घाट से निकलने वाले जल संसाधनों पर कोई आधारभूत अध्ययन नहीं किया गया है। बॉक्साइट जमा पानी को संग्रहीत करने के लिए जाने जाते हैं, और अगर ये स्रोत नष्ट हो जाते हैं, तो निस्संदेह यह स्थानीय आबादी के जीवन को प्रभावित करेगा।"

लक्ष्मण नायक कहते हैं ''दक्षिण–पश्चिम उड़ीसा के जितने माली (पहाड़) है सब उनकी नजर में हैं। सरकार क्या चाहती है हमे नहीं पता लेकिन हम दलित, आदिवासी को किस नजरिया से देखते हैं, हमें जीना चाहिए या नहीं?हम इस देश के मूल निवासी हैं। भारत के आजाद हुए 75 साल हो गये, लेकिन हम अब भी आजाद नहीं हैं। हमें झूठे केस लगाकर जेल भेज जाता है। हम नियमगिरि में जा भी नही सकते। अगर सही विकास करना है तो वहां पर बहुत सारे फ्रूट मिलते हैं उसको अच्छा रेट दें। नियमगिरि में डोंगरिया कौम जहां रहता है, 70 साल बाद भी स्कूल नहीं है, पीने का पानी नहीं है, बिजली नहीं है तो क्या हमें जीने का अधिकार नहीं है?सभी राजनीतिक पार्टियां, मीडिया, पुलिस प्रशासन कम्पनी को सर्पोट कर रहे हैं, हम बहुत दबाव में हैं। हमें पेसा कानून के जरिए मौलिक अधिकार मिले हैं। हम दलित, आदिवासी उड़ीसा में जहां भी हैं, विस्थापित किये जा रहे हैं। जब यहां के पीड़ित लोग एकजुट होते हैं तो उनको बांटने की कोशिश की जाती है। काशीपुर के सब इंसपेक्टर पी.के स्वामी ने हमसे कहा कि तुम दलित हो, आदिवासी लोगों को क्यों मद्द कर रहे हो। क्या हमारे पास किसी का मद्द करने का संवैधांनिक अधिकार नहीं है। मीडिया में भी हमारी बात को नहीं सुनी जाती है।''

'नियमगिरि सुरक्षा समिति' के उपेन्द्र आर्य बताते हैं कि ''विस्थापित होने से न रहने की जगह, न खाने का है। **पहले सपना दिखाया गया की मकान देंगे, बच्चों को पढ़ायेंगे, नौकरी देंगे–ये सब सपने दिखाकर दलाल बना लिये। वे सभी गांव में जाकर कहते थे कि तुम लोग केरल, बम्बे जाते हो कमाने, अब यहां पर काम मिलेगा। यह सब कहकर लोगों को आन्दोलन के प्रति भड़काते थे।** पहले से विस्थापित लोगों को नौकरी नहीं दी जा रही है वह ''लैंड लूजर' संगठन बनाकर संघर्ष कर रहे हैं।'' 15 अक्टूबर, 2023 को समाचार पत्र में छपे लेख में लिखा गया है– ''हर जगह चौकस निगाहें आपका पीछा करती हैं। सड़क के किनारे बाइक पर खड़े युवाओं के छोटे–छोटे समूह किसी अजनबी को देखते ही अपने मोबाइल फोन निकाल लेते हैं और उसका इस्तेमाल करने लगते हैं। वे चुपचाप गाड़ी का पीछा भी करते हैं। इन्हें कंटामाल और अलीगुना के मूल निवासी 'कंपनी के एजेंट' कहते हैं। गांवों में प्रवेश और निकास के कुछ प्वाइंट पर छद्‌म वेषधारी लोग दिखाई देते हैं।''

जब लोगों ने तीजीमाली, कुटरूमाली और माजनमाली को खनन के लिए विरोध करने के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं तो 12 अगस्त 2023 से पुलिस–प्रशासन नमारा कम्पनियों की मिलीभगत से दमन शुरू किया गया। मैथरी इंफ्रास्ट्रक्चर एंड माइनिंग इंडिया (एमआईएमआई) प्राइवेट लिमिटेड (इसी कम्पनी को खादानों की संचालन करने को मिला है) के सर्वेक्षकों ने 12 अगस्त, 2023 को पुलिस में दो पन्नों की शिकायत दर्ज कराई। इसमें दावा किया गया था कि कुल्हाड़ी और लाठियों से लैस ग्रामीणों ने उन्हें घेर लिया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया और उन पर पत्थर फेंके और उन्हें बंधक बना लिया। 12 अगस्त की घटना के बाद काशीपुर पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की कई धाराओं के तहत एफआईआर दर्ज की, जिसमें 147 और 148 (दंगा), 341 (गलत तरीके से रोकना), 307 (हत्या का प्रयास), साथ ही आर्म्स एक्ट, 1959 की धारा 25 शामिल है। नामजद किए गए ग्रामीण कांतामल, बंतेजी, सरमबाई, सुंगर, शगाबारी, अलीगुना, कुटमल, बुंदेल और डुमरपदर के थे; 23 लोगों को गिरफ्तार किया गया है, जबकि 71 लोग छिपे हुए हैं। एफआईआर में "अन्य" 100 अज्ञात लोगों का नाम भी शामिल है। केरल में काम करने वाले एक ग्रामीण पर मामला दर्ज किया गया है। पांच साल पहले मृत व्यक्ति को पकड़ने के लिए पुलिस आई थी। कार्तिक नायक को सुंगेर इलाके से गिरफ्तार कर लिया। कार्तिक की गिरफ़्तारी के विरोध में 500–700 से ज़्यादा स्थानीय लोगों ने पारंपरिक हथियारों के साथ काशीपुर पुलिस थाने का घेराव कर दिया। उन्होंने थाने के परिसर में टायर जलाकर प्रदर्शन किया और कार्तिक की तुरंत रिहाई की मांग की। रायगड़ा के एसपी विवेकानंद शर्मा का कहना है कि काशीपुर में अपहरण और कानून–व्यवस्था के उल्लंघन जैसी कई घटनाएं हुईं। इस कारण से हमें मामले दर्ज करने पड़े और मामले को बढ़ने से रोकने के लिए कार्रवाई करनी पड़ा।

वेदांता और अदानी के नये खनन को लेकर लोगों में आक्रोश फूट रहा है और जगह–जगह कार्यक्रम हो रहा है। इसी तरह का कार्यक्रम 9 अक्टूबर, 2024 को तीजीमाली में **'मां, माटी माली सुरक्षा मंच'** का कार्यक्रम स्थानीय लोगों नमारा रखा गया था, जिसमें लिंगराज आजाद ने बताया कि आदवासी राष्ट्रपति और मुख्यमंत्री बनाकर आदिवासियों को ही मारा जा रहा है। तीजीमाली से 62 गांव प्रत्यक्ष और 200 गांव अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होंगे। अन्य वक्तओं ने भी इस लड़ाई को केवल तीजीमाली की लड़ाई नहीं देश बचाने की लड़ाई बताई। आजादी के बाद भारत के विकास में सबसे ज्यादा विस्थापन की मार आदिवासियों को झेलना पड़ा है। आज आदिवासियों की लड़ाई को पुलिस, पैरा मिलिट्री के बुटों के तले कुचला जा रहा है। आदिवासियों का फर्जी इनकांउटर किया जा रहा है, उनको झूठे केसों में फंसा कर जेल में डाला जा रहा है और उनकी जल–जंगल–जमीन को पूंजीतियों के

विकास के लिए हड़पा जा रहा है। इस लड़ाई को समर्थन देने और कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढने के लिए उड़ीसा के समाजवादी जन परिषद, एनपीएम, स्थानीय पत्रकार सहित दिल्ली से संयुक्त किसान मोर्चा से पी. कृष्णाप्रसाद, सामाजिक कार्यकर्त्ता और पत्रकार सुनील कुमार, यूपी से किसान–मजदूर परिषद से अफलातून और राजेन्द्र चौधरी ने भाग लिया। तीजीमाली के संघर्ष को संयुक्त किसान मोर्चा ने समर्थन करते हुए 22 नवम्बर, 2024 को समर्थन करते हुए प्रेस वक्तवय दिया है। एसकेएम ने भाजपा के नेतृत्व वाली ओड़िशा सरकार पर आरोप लगाया है कि वह अडानी, वेदांता और लार्सन एंड टूब्रो जैसे बड़े कॉरपोरेट घरानों को ओड़िशा के कालाहांडी और रायगड़ जिलों में तीजीमाली, कुटरूमाली, माजनमाली और खंडुआलमाली जैसे बॉक्साइट सहित खनिजों से समृद्ध पहाड़ों को कब्जा करने में मदद कर रही है, जिससे हजारों किसानों, जिनमें से अधिकांश आदिवासी हैं, की बलपूर्वक बेदखली का खतरा पैदा हो गया है।

एसकेएम ने इस क्षेत्र में लगभग 50,000 किसान परिवारों नमारा चलाए जा रहे जन संघर्षों का समर्थन किया है, ताकि वे अपनी उपजाऊ कृषि भूमि, जंगल, वन्यजीव और 250 से अधिक बारहमासी झरनों, नदियों को बड़े कॉर्पोरेट घरानों नमारा खनन के लिए अतिक्रमण और कब्ज़ा किए जाने से बचा सके, जिनका उपयोग वे अपनी खेती और सिंचाई के लिए करते है। ये किसान कई पीढ़ियों से इस उपजाऊ भूमि पर धान, रागी, अलसी, तिल, अरंडी, चिरौंजी (कड़वा नट) और काजू उगाते आ रहे हैं।

खनन–चंदा और धंधा

खनन मंत्रालय नमारा 1 अगस्त्, 2024 को जारी किये गये प्रेस वक्तव्य में भारत में होने वाले खनन की जानकारी दी गई है। खनन मंत्रालय के वक्तव्य में कहा गया है कि–2024–25 में 10.43 लाख टन एल्युमीनियम का उत्पादन हुआ। एल्युमीनियम उत्पादन में भारत, दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश बन गया है और चूना उत्पादक में तीसरा और लौह अयस्क उत्पादक चौथे नम्बर पर है। लौह अयस्क का उत्पादन वित्त वर्ष 2023–24 (अप्रैल–जून) में 72 मिलियन मीट्रिक टन (एमएमटी) से बढ़कर वित्त वर्ष 2024–25 (अप्रैल–जून) में 79 मिलियन मीट्रिक टन (एमएमटी) हो गया है, जो 9.7 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाता है। चूना पत्थर का उत्पादन वित्त वर्ष 2023–24 (अप्रैल–जून) में 114 एमएमटी से बढ़कर वित्त वर्ष 2024–25 (अप्रैल–जून) में 116 एमएमटी हो गया है, जो 1.8 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाता है। मैंगनीज अयस्क का उत्पादन वित्त वर्ष 2024–25 (अप्रैल–जून) में 11 प्रतिशत बढ़कर 1.0 एमएमटी हो गया है, जो पिछले वर्ष की इसी अवधि में 0.9 एमएमटी था। खनन मंत्रालय नमारा जारी आंकड़े के अनुसार–

31 मार्च, 2023 तक छोटे खनिजों, परमाणु, हाइड्रोकार्बन ऊर्जा को छोड़ कर, 2,82,356.54 हेक्टेअर जमीन खनन कम्पनियों को दी गई है, जिसमें 3007 खनन के पट्टे दिये गये हैं। इनमें सबसे अधिक 2 से 5 हेक्टेअर वाले 809 (27 प्रतिशत) खनन के पट्टे हैं, सबसे कम 500 हेक्टेअर से अधिक वाले 160 (5.4 प्रतिशत) खनन पट्टे पर दिए गए हैं।

Sources: Respective State Governments (DGMsèDMGs etc).

Note: Data received from respective regional offices of IBM have also been taken in account wherever necessary. (P): Provisional ++: Negligible

*: Other than Atomic, Hydro Carbons Energy & Minor Minerals

इन खनन क्षेत्रों में ओड़िसा का स्थान पहला रहा है, जहां से करीब 50 प्रतिशत खनन उत्पादन किया जा रहा है।

ओड़िसा के 2023–24 खनिज उत्पादन पर एक नजर

महालेखा परीक्षक (कैग) की रिपोर्ट बताती है कि 2015 से 2022 तक 23 कम्पनियों ने मिलकर ओड़िसा सरकार को 22,392 करोड़ रू. राजस्व का नुकसान किया है। न्यूजलॉन्ड्री के अनुसार इनमें से आठ कम्पनियों (एस्सेल माइनिंग, जेएसपीएल, केपी, रूंगटा संस, पेंगुइन एंड ट्रेड एंड एजेंसी, एसएन मोहंती, केजेएस अहलूवालिया और इंद्राणी पटनायक) ने 6,962 करोड़ रू. के राज्स्व का नुकसान किया और 601 करोड़ रू. के चुनावी बॉन्ड खरीदा। सत्ताधारी बीजेडी को 453 करोड रू., बीजेपी को 145 करोड रू. अैर कांग्रेस को 3 करोड़ रू. चुनावी बॉन्ड के रूप में रिश्वत पहुंचाया। चार कम्पनियों ने बीजेपी और बीजेडी दोनों और दो–दो कम्पनियों ने केवल बीजेपी और बीजेडी का चुनावी बांड से रिश्वत दिया। एक कम्पनी ने बीजेपी, बीजेडी और कांग्रेस तीनों मुख्य पार्टियों को चुनावी बांड के रूप में रिश्वत पहुंचाया। यह कोई अनजाने या गलतफहमी में नहीं हुआ है।

इन कम्पनियों के खिलाफ 2013 में एमबी शाह आयोग कि रिपोर्ट के 23 में से 20 कम्पनियों का खनन उल्लंघन मामले में नाम था।

कैग की रिपोर्ट ने न केवल भ्रष्टाचार को उजागर किया है बल्कि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने, खनन पट्टे, परमिट और लाइसेंस देने में भी अनियमितता की बात बताती है। सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में सरकार से लौह अयस्क खनन में सीमा लगाने के बारे में पूछा है। ओड़िसा सरकार ने सुप्रीम कोर्ट को जानकारी दी है कि मौजूदा समय में अवैध खान के कारण ब्याज को छोड़कर 2,622 करोड़ रू. की राशि बकाया है, जिसमें से 2,215 करोड़ रू. केवल पांच कम्पनियों पर है।

इन खादानों के पट्टे देने में भी अपने नियम–कानून को सरकार ताक पर रख देती है। उदाहरणस्वरूप, सुंदरगढ़ जिले के कोइड़ा में पटमुंडा मैंगनीज खदान को सन एलॉयज एंड मिनरल्स प्राइवेट लिमिटेड को 12 फरवरी, 1996 को पट्टे पर दी गई थी। 43.53 हेक्टेयर क्षेत्र में फैली यह खदान 11 फरवरी, 2006 से बंद है।

अगर कोई खदान यदि दो साल तक बंद रहती है, उससे कोई अयस्क नहीं निकाला जाता है, तो उसका पट्टा आवंटन रद्द कर दिया जाएगा और नया पट्टा आवंटित किया जाएगा। पटमुंडा खदान 18 साल से बंद होने के बावजूद उसके पट्टे को रद्द नहीं किया गया और ना ही उसे दुबारा नीलाम किया गया। बल्कि चुनाव से ठीक पहले पटनायक सरकार पटमुंडा खदान को सन एलॉयज एंड मिनरल्स प्राइवेट लिमिटेड को फिर से आवंटित कर दिया। खनिज रियायत अधिनियम, 2016 की धारा 24 में नीलामी के माध्यम से प्रदान न किए गए सभी खनन पट्टों को रद्द करने का प्रावधान है।

खनन की मांग

चार प्रमुख क्षेत्रों में एल्युमीनियम की मांग मजबूत बनी हुई हैः परिवहन (ऑटोमोबाइल सहित), इलेक्ट्रिकल, निर्माण और पैकेजिंग। परियोजनाओं के निरंतर विस्तार और बढ़ती खपत को देखते हुए 2030 तक धातु की कीमत 3,000 डॉलर प्रति टन तक बढ़ जाएगी। 2023 में बाजार मूल्य 1,62,187.9 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंचने की उम्मीद है और 2033 तक 2,98,779.7 मिलियन अमेरिकी डॉलर मूल्य का होने का अनुमान है।

वैश्कि चूना पत्थर का बाजार का आकार 2023 में 41.93 बिलियन अमेरिकी डॉलर था और 2024 में 42.99 बिलियन अमेरिकी डॉलर। 2032 तक 53.27 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंचने का अनुमान है। 2023 में लौह अयस्क बाजार का आकार 349.85 बिलियन अमरीकी डॉलर था और 2024 में 372.0 बिलियन अमरीकी डॉलर। 2032 तक 498.64 बिलियन अमरीकी डॉलर तक बढ़ने का अनुमान है। यही कारण है कि देशी–विदेशी पूंजीपतियों की निगाहें खनन क्षेत्र में लगी हुई है और अदानी भी इस क्षेत्र में बढ़ते मार्केट और मुनाफे को देखते हुए खनन क्षेत्र में उतर गया है। भारत लगातार अपने खनन क्षेत्र को बढा रहा है जिससे मानवीय नुकसान के अलावा बड़े पैमाने पर पर्यावरण का नुकसान हो रहा है। भारत एल्युमीनियम उत्पादन में विश्व का दूसरा तो चूना पत्थर और लौह अयस्क उत्पादन में तिसरा और चौथा उत्पादक देश बन गया है।

खनन क्षेत्र में वृद्धि देखी जा रही है लेकिन इसका लाभ आम आदमी को नहीं कुछ मुट्ठी भर उद्योगपतियों को मिल रहा है। इसलिए संसाधनों से अमीर राज्य ओड़िसा, छत्तीसगढ़, झारंखड की जनता गरीब है। खनन के लिए बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापीत किया जा रहा है, विस्थापन के खिलाफ आन्दोलन करने पर पैरामिलिट्री बल भेज जनता के ऊपर दमन चक्र चलाया जा रहा है। धनपिपाशुओं को खुश करने के लिए राज्य निर्दोष आदिवासियों, दलितों जो पहले से हाशिए पर हैं उन पर लगातार दमन कर रही है और जेलों में डाल रही है। जितना खनन होगा उसका मूल्य वहां की जनता, पशु–पक्षी, पेड़, औषधियां, नदी, झरने को चुकाने होंगे।

खनन क्षेत्र में वृद्धि देखी जा रही है लेकिन इसका लाभ आम आदमी को नहीं कुछ मुट्ठी भर उद्योगपतियों को मिल रहा है। इसलिए संसाधनों से अमीर राज्य ओड़िसा, छत्तीसगढ़, झारंखड की जनता गरीब है। खनन के लिए बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापीत किया जा रहा है, विस्थापन के खिलाफ आन्दोलन करने पर पैरामिलिट्री बल भेज जनता के ऊपर दमन चक्र चलाया जा रहा है। धनपिपाशुओं को खुश करने के लिए राज्य निर्दोष आदिवासियों, दलितों पर लगातार दमन कर रही है और जेलों में डाल रही है। यह समुदाय पहले से ही हाशिये पर जी रहा है। जितना खनन होगा उसका मूल्य वहां की जनता, पशु–पक्षी, पेड़, औषधियां, नदी, झरने इत्यादी को चुकाने पड़ेंगे।

भूमि संबंधी समस्याएँ

जल, जंगल, पहाड़ आदिवासी समुदाय की मुख्य पहचान होती है जहां पर वह प्राकृति के साथ जीवन जिते हैं और उनका संरक्षण करते आये हैं। आदिवासी जो यहां के मूलवासी हैं उनमें समाजवादी संस्कृत का बीज मिलता है। उनके पास जमीन के दस्तावेज नहीं होते। बाहर से आये हुए अपने आदिवसी समाज को भी जगह देते हैं और उनका निवास स्थान बना देते हैं। दस्तावेज नहीं होने के कारण उनको अपनी भूमि से जबरदस्ती हटा दिए जाना सरकार के लिए आसान होता है। आदिवासी भूमि में निजी अधिकार की जगह वो समुदाय अधिकार में विश्वास रखते है और इस प्रकार भूमि संबंधित मुकदमेबाजी के मामलो में उनके पास स्वामितव का लिखित प्रमाण उपलब्ध नही होता। इस सन्दर्भ में जनजातियों के दावे अधिकतर मौखिक साक्ष्य पर आधरित होते हैं परिणाम स्वरूप उनके निजी अधिकार स्थापित करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

आदिवासी एक स्थान पर खेती नहीं करते हैं वो अदल–बदल कर खेती करते हैं। घर बनाने के लिए सामग्री, सजवाट के लिए सामग्री, फल–फूल, छोटे शिकार, औषधी, चारा, खाना, जलावन, पारंपरिक कला, इत्यादि के लिए वन और पहाड़ पर निर्भर रहते हैं। विस्थापन और पुर्नवास से इसकी क्षत्तिपूर्ती नहीं हो सकती। पुनर्वास कालोनियां उचित स्वास्थ्य सुविधाओं, सुरक्षित पीने के पानी, बाजार, विद्यालय एवं यातायात के साधनों से वंचित होती हैं। भूमि अभिग्रहण, पुनरुनमार एवं पुनर्वास में उचित मुआवजे एवं पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013 के अंतर्गत जनजातियों को दिया गया मुआवजा कम होता है एवं पुनर्वास पर प्रदान की गयी जीवन परिस्थितियां बहुत घटिया होती हैं।

विकास परियोजनों बाँध, वन्य जिवों की शरण स्थान, खादान इत्यादि के लिए भूमी की जरूरत है। यह विकास आदिवासियों से भिन्न जातियों की इन क्षेत्रों में रोजगार हेतु आवागमन बढा देता है। इस कारण आदिवासी प्रतिस्पर्धा में टीक नहीं पाते परिणामस्वरूप गैर विस्थापित आदिवासी को भी वहां से निकल जाने पर मजबूर करते हैं। तथाकथित विकास का लाभ भी

आदिवासियों को नहीं मिल पाता है।

हाशिए पर जी रहे लोगों के लिए कोई कानून व्यवस्था भी उनके पक्ष में काम नहीं करती। पुलिस–प्रशासन उनको सरंक्षण देने की जगह उन पर जुल्म करती नजर आती है। आदिवासी समुदायों को विस्थापन करके उनकी भूमि, निवास, जीविका, राजनैतिक व्यवस्था, सांस्कृतिक, मूल्यों एवं पहचान से वंचित किया जाता है। विकास के नाम पर कुछ लोगों की प्रत्यक्ष तथा कुछ अप्रत्यक्ष रूप से विस्थापित होते हैं। यह केवल आदिवासियों की क्षति नहीं यह हमारी, आपकी हर भारतवासी की क्षति समझी जानी चाहिए।

भूमि का एक बड़ा भाग वन क्षेत्रों में आता है। दूर–दराज क्षेत्र की अधिकतर जनजातियाँ उन जमीनों में बिना किसी अधिकार, हक, एवं हित के उस भूमि पर रहते हैं और उन बेघर जनजातियों हेतु अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 के अंतर्गत उनके अधिकारों की सुरक्षा हेतु कोई विधिक प्रावधान नहीं है। अगर आदिवासियों से जल–जंगल–जमीन छिना जा रहा है जिससे वह प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं वहीं दूसरे इलाके के लोग अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होत हैं। घटते जंगल, बढते प्रदूषण से जलवायु परिवर्तन होता है जिससे खेती के नुकसान के साथ साथ, स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। हम अनेकों तरह के नये नये बिमारियों से जुझते हैं और असमय काल के ग्रास बन जाते हैं या हमारा जीवन दवा पर निर्भर हो जाता है। हम सभी को पूंजीपतियों के महालूट से उपजे महाविनाश के खेल को पूरजोर तरीके से विरोध करना चाहिए। हमें क्षेत्रिय, जातीय, धार्मिक, लिंग भेद भाव के बिना इन खनन परियोजनाओं को जोरदार रूप से विरोध करना चाहिए और हमें अपने और अपनों को बचाने के लिए आगे आने चाहिए। हमें अपने भविष्य, बच्चों के भविष्य को बचाना है तो पर्यावरण को बचाना होगा। पर्यावरण को बचाना है तो आदिवासी जनता की जल–जंगल–जमीन की लड़ाई का समर्थन करना होगा। हमें एकजुट होकर उन पर हो रहे दमन का विरोध करना होगा।

तिजिमाली के संघर्ष की आंशिक जीत

तिजिमाली (सिजिमाली) की आदिवासी जनता को दो साल से अधिक लंबे संघर्ष के बाद आंशिक जीत मिली है। भारत सरकार के वन मंत्रालय की वन सलाहकार समिति (थ।ब), जिसकी बैठक 25 अगस्त 2025 को हुई थी, ने वेदांता लिमिटेड के सिजिमाली में बॉक्साइट खदानों के लिए 700 हेक्टेयर से ज़्यादा वन भूमि हस्तांतरित करने के प्रस्ताव पर फिलहाल कोई निर्णय नहीं लिया।

एफएसी ने पारिस्थितिक चिंताओं को चिह्नित करते हुए कहा कि यह परियोजना हाथियों के रिज़र्व क्षेत्र में आती है और इससे गंभीर मिट्टी का कटाव होगा। समिति ने राज्य सरकार से विस्तृत कटाव नियंत्रण योजना प्रस्तुत करने को कहा है और प्रोजेक्ट एलिफेंट से भी इनपुट मांगे हैं। जब तक राज्य सरकार समिति नमारा पहचानी गई कमियों को दूर नहीं करती, यह परियोजना स्थगित रहेगी।

समिति ने अपनी बैठक में ओडिशा उच्च न्यायालय में उठाई गई चिंताओं का हवाला भी दिया। उसने कहा कि सामुदायिक सहमति, प्रतिपूरक वनरोपण और पारिस्थितिक जोखिमों से जुड़े कई मुद्दे अब भी अनसुलझे हैं। ओडिशा सरकार नमारा प्रस्तुत रिपोर्ट में ग्रामीणों और याचिकाकर्ताओं नमारा उच्च न्यायालय में उठाई गई चिंताओं का उल्लेख तक नहीं है। इससे पहले 5 मार्च 2025 को ओडिशा उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने केंद्र सरकार को आदेश दिया था कि वेदांता समूह की वन भूमि हस्तांतरण योजना को मंजूरी देने से पहले स्थानीय समुदायों के वन अधिकारों के दावों पर विचार किया जाए।

यह परियोजना विवाद के केंद्र में तब आई जब तिजिमाली की 700 हेक्टेयर से ज़्यादा ज़मीन हड़पने के लिए 8 दिसंबर 2023 को फर्जी ग्राम सभाओं के माध्यम से परियोजना लागू करने का प्रस्ताव पारित कर दिया गया। एक ही दिन में 10 गांवों में ग्राम सभाएँ कराई गईं, जिनमें मृत लोगों के हस्ताक्षर और पढ़े–लिखे नौजवानों के अंगूठों के निशान दर्ज किए गए थे।

वन सलाहकार समिति नमारा परियोजना को अस्थायी रूप से स्थगित करना उन जनता के लिए एक बड़ी राहत है, जो पिछले दो वर्षों से लड़ रही है और आज भी पुलिस दमन झेल रही है। कई कार्यकर्ताओं पर फर्जी मुकदमे लगाकर उन्हें जेलों में डाल दिया गया है। अब तक उन पर से केस वापस नहीं लिया गया है।

अंत में, मैं रायगढ़ा की जनता से कहना चाहता हूँ कि इस आंशिक जीत से उन्हें और अधिक संगठित होने का समय मिल गया है। क्योंकि उनकी लड़ाई केवल तिजिमाली तक सीमित नहीं हैकृवे कुटरूमाली और माजनमाली को बचाने की लड़ाई भी लड़ रहे हैं। कुटरूमाली और माजनमाली को अदानी की कंपनी मुद्रा एल्युमीनियम लिमिटेड को सौंपा गया है। अदानी की ओर से पूरे रायगढ़ा का सर्वेक्षण करने का आदेश जारी हुआ है। वन विभाग के पास एक पेपर है, जिसका एम. आर. नंबर QR–124/123 है।

रायगढ़ा ज़िले और भारत की पूरी जनता से कहना चाहता हूँ कि उन्हें और संगठित होकर लड़ाई लड़नी होगी। क्योंकि आदिवासी केवल अपनी नहीं, बल्कि पूरी मानव जाति के भविष्य की लड़ाई लड़ रहे हैं। जंगलों की अंधाधुंध कटाई से जलवायु परिवर्तन हो रहा हैकृकहीं बाढ़ आ रही है, तो कहीं सूखा। इससे पूरी मानव जाति पर संकट मंडरा रहा है। शहरों तक में बाढ़ आ रही है, गाड़ियाँ बह रही हैं, मकान गिर रहे हैं, सड़कें टूट रही हैं और असमय परिवार के परिवार काल का ग्रास बन रहे हैं।

समय को साधता जुबीन का संगीत

डॉ. संजय सिंह

कुछ दिन पहले गुवाहाटी में गायक, संगीतकार जुबीन गर्ग की अंतिम यात्रा में उमड़े लाखों लोगों ने साबित कर दिया है कि कलाएं यदि ईमानदार, जनपक्षीय और सहज हों तो कैसा चमत्कार हो सकता है? यह चमत्कार हमें भूपेन हजारिका, सत्यजीत राय, सौमित्र चटर्जी जैसों की अंतिम विदाई में भी दिखा था। प्रस्तुत है, जुबीन गर्ग की हैसियत बताता डॉ. संजय सिंह का यह लेख।-संपादक

जुबीन का जीवन सचमुच एक आंदोलन रहा - एक ऐसा आंदोलन जिसमें सुर है, ताल है, छंद है, जिसमें मिट्टी की गंध है, नदी की धार है, ख्वाब हैं और ख़्वाबों का बिखरना-संवरना भी है। जुबीन गर्ग की आवाज़ सिर्फ गीत नहीं, आंदोलन बन गई। उनका हर गीत केवल संगीत नहीं था, बल्कि सामाजिक जागरूकता और न्याय के लिए खड़ी आवाज़ थी। यह आवाज लोगों को जोड़ती, बेचैनी और शांति, दर्द और खुशी, सबको एक साथ महसूस कराती थी। लोगों को जगाने का साहस उनकी धुनों में हमेशा मौजूद रहा।

उनकी बांग्ला और असमिया रचनाएं लोगों के दिलों में गूंजती हैं। दुर्गापूजा से पहले उनका जाना न केवल असम, बल्कि बंगाल समेत समूचे उत्तर-पूर्व में शोक की लहर छोड़ गया। 'लुइत कंठो' अर्थात 'ब्रह्मपुत्र की आवाज़' कहे जाने वाले जुबीन गर्ग ने असम और पूर्वोत्तर भारत के लोगों को उनकी सांस्कृतिक पहचान से जोड़ा। उनकी प्रेरणा ने नए कलाकारों को भी लोक-संस्कृति, भाषा और परंपराओं को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित किया।

18 नवम्बर 1992 को मेघालय के तुरा में मोहीनी मोहन बढ़ठाकुर के घर जन्मे जुबीन गर्ग के पिता मजिस्ट्रेट होने के साथ-साथ लेखक भी थे और माता एक गायिका। पिता का तबादला बार-बार होता था इसलिए परिवार लगातार अलग-अलग जगहों पर रहा और जुबीन – जो 'गोल्डी दा' कहलाते थे - को अलग-अलग स्कूलों में पढ़ाई करनी पड़ी। इसी दौरान जुबिन ने अनेक भाषाएं सीखीं और बाद में वे भाषाओं और बोलियों की लडाई को खत्म करने का सपना देखने लगे। वे किसी एक भाषा के वर्चस्व या दमन को स्वीकार नहीं करते थे। जुबिन ने अपने नाम के पीछे बढ़ठाकुर हटाकर गर्ग रखा था जो उनका गोत्र था।

उनकी यह सोच उनके गीतों में भी झलकी। उन्होंने 40 से अधिक भाषाओं में गाया - असमिया, बंगाली, हिन्दी, अंग्रेजी, मलयालयम से लेकर विष्णुप्रिया मणिपुरी, बोडो, डिमासा, टिया जैसी जनजातीय भाषाओं तक में उनके गीत हैं। छोटे-छोटे समुदायों की भाषाओं में गाए उनके गीत बेहद लोकप्रिय हुए। जुबीन का मानना था - 'हमारी भाषा को 'बोली' कहकर उसका अपमान न करें, क्योंकि उनमें हमारी हजारों साल की सीख, संस्कृति और विरासत सन्निहित है।'

उन्होंने असम में हिन्दी-असमिया भाषा विवाद को समाप्त करने का प्रयास किया। 'बिहू पर्व' पर उन्होंने हिन्दी गीत गाया, ताकि लोग समझें कि भाषा विवाद दरअसल वास्तविक समस्या नहीं है, उसकी राजनीति ही असली समस्या है। बंगाल में भी वे उतने ही लोकप्रिय हुए और वहां उन्हें कई राष्ट्रीय पुरस्कारों के साथ-साथ गहरा स्नेह मिला। असम में वे जुबिन दा और बंगाल में 'गोल्डी दा' - दोनों नामों से सबके प्रिय बने। पिछले 33 वर्षों से जुबीन असम की जनता, विशेषकर युवाओं के दर्द, निराशा, गुस्से और विद्रोह को अपनी गायकी से आवाज़ देते रहे और सबके जीवन में शोषण और वंचना के प्रतिरोध का हथियार बने।

जब 'एनआरसी' (नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजन्स) का विरोध-प्रदर्शन शुरू हुआ तब जुबीन पीछे नहीं हटे। सरकार आक्रामक थी, दमन चरम पर था, लाखों लोग कैंपों में शरणार्थी की तरह रहने को मजबूर थे। यह दृश्य जुबीन से देखा नहीं गया। वे केवल गीत गाने तक सीमित नहीं रहे, बल्कि खुद सड़कों पर उतर आए। उनका विरोध दिखावे या नाम चमकाने के लिए नहीं था, बल्कि पीड़ितों की वास्तविकता से उपजा था। वे लोगों के बीच जाते, उन्हें प्रेरित करते और आंदोलनों को शांतिपूर्वक चलाने की अपील करते। जब युवा अशांत

होते, तो वे अपने गीतों से उन्हें शांति का संदेश देते।

उन दिनों असम के लाखों लोग अपने सालों पुराने पुश्तैनी घर, जमीन और रोज़गार से वंचित हो गए थे। असहायता और गुस्से के बीच जुबिन उनके लिए सहारा बने। उन्होंने पीड़ितों की आवाज़ दिल्ली और दुनियाभर में पहुंचाई। कोलकाता में भी इसका बड़ा असर हुआ और असम की जनता के लिए गहरी सहानुभूति पैदा हुई। असम की बाढ़ और कोरोना जैसी आपदाओं में उन्होंने राहत कार्यों में योगदान दिया और लोगों को मदद के लिए प्रेरित किया। अपने घर को ही कोरोना राहत में सबके लिए खोल दिया।

इस तरह जुबीन केवल गायक नहीं रहे, बल्कि एक आंदोलन बन गए - सुरों से संघर्ष तक का आंदोलन। 'गोल्डी दा' ने अपने घर के सामने एक चीड का पेड़ लगाया था। वे अक्सर उस पेड़ से लिपटकर बातें किया करते थे और कहते थे - 'यह पेड़ जब तक जिंदा है, मैं भी उतने दिन जिंदा रहूंगा।' इस साल आए तूफान में वह पेड उखड़ गया। अपने वचनों को इतना पक्का निभा देंगे 'गोल्डी दा' - यह तो उनके साथियों ने सोचा भी नहीं था।

वर्ष 1991 में 'बी बरुआ कॉलेज' में ग्रेजुएशन की परीक्षा के दौरान जुबीन ने अपनी उत्तर पुस्तिका बिल्कुल खाली छोड़ दी। कॉलेज के अध्यक्ष ने उन्हें अपने कमरे में बुलाकर कारण पूछा। 'गोल्डी दा' का सीधा जवाब था - 'मैं गाता हूं, यह सब मेरे लिए नहीं है।' अध्यक्ष जी गुस्से में पूछ बैठे - 'गाना गाने से क्या पेट भरेगा?' लेकिन अगले ही साल उनका एल्बम 'अनामिका' जबरदस्त लोकप्रिय हुआ और जुबीन एक सितारे की तरह उभर आए। यही नहीं, कॉलेज की स्वर्ण जयंती पर वही जुबीन, जिसने एक बार वॉकआउट किया था, मुख्य अतिथि के रुप में उपस्थित थे। उस दिन कॉलेज का मान और शोभा दोनों कई गुना बढ़ .गई।

जुबीन ने हिम्मत से कहा था कि 'मेरा कोई जात नहीं, मेरा कोई धर्म नहीं, मेरा कोई भगवान नहीं, मैं मुक्त हूं, मैं ही कांचनजंघा हूं।' यह कहने का साहस आज दुनिया में कितने कलाकारों या लोगों में है? स्वयं को सभी बंधन और पहचान से आजाद करना और मानवता की पहचान के साथ जोड़ना - ठीक टैगोर की भाषा में कहें तो - 'चित्त येथा भय शून्य, उच्च येथा सिर।' कांचनजंघा की तरह हमेशा खड़ा रहने की जिद और प्रतिज्ञा, हिम्मत और विनम्रता के साथ।

उनकी अंतिम यात्रा में लाखों लोग शामिल हुए - यही सबूत है कि उनका प्रभाव और सम्मान कितना गहरा था। यह माहौल ठीक उसी तरह था, जैसे 9 नवम्बर 2011 को भूपेन हजारिका के अंतिम दर्शन के समय था। असम के लोगों को भरोसा था - भूपेन दा तो नहीं रहे, परंतु जुबिन दा तो हैं। ऐसा भरोसा और लोगों के साथ जुबीन के मजबूत रिश्तों और गहराई की अनुभूति कराता है। जुबीन के अंतिम समय के साक्षी, यंत्रशिल्पी साथी शेखर गोस्वामी को उन्होंने ही तैरना सिखाया था और कहा था - 'तैरने से डरना नहीं, समुद्र किसी को नहीं डुबोता।'

प्रकृति की इस विशालता पर इतना भरोसा और साथियों को हौसला बढ़ाते देखना, जुबीन की हर परफ़ॉर्मेंस में झलकता था। जुबीन बहुत ही सहज थे। असमी सरलता हमेशा उनके व्यवहार में अभिव्यक्त होती है। उनके गानों में भी यही सरलता एक मिठास बनकर दिलों को छू जाती थी। नदियों, पहाड़, खेत, खलिहान, मिट्टी-रिश्ते, सब कुछ उनके गानों से गुजरते हुए अपनेपन से लोगों को अपने गांव, अपनी जमीन और आसपास से जोड़ देता था। वह लोगों को एक नई पहचान देते थे - खुद से।

जुबीन को लोग समाजवादी कहते थे, लेकिन वे चेग्वेवारा को मानते थे। वे भूपेन दा और बंगाल-असम के अनेक मनीषियों से प्रभावित थे। आंदोलन में वे गांधी से सीख लेते थे और अहिंसा के रास्ते पर चलने का प्रयास करते थे। लोगों को अब भी लग रहा है कि 'जुबिन दा' दो रंगों के जूते, मनमोहक विचित्र टोपी और मुस्कान के साथ स्टेज पर हाजिर होकर अपने चाहने वालों से कह देंगे – 'मैं वापस आ गया हूं।'

मोहिनी मोहन बढ़ठाकुर शायद दुनिया के अकेले पिता होंगे जिन्होंने अपने बेटे की जीवनी लिखने की घोषणा की। उनकी पत्नी गरिमा ने कहा कि जुबीन को खूब प्यार किया है, आप लोगों ने। उन्हें आखिरी समय शांतिपूर्वक देखिए। अंतिम बिदाई में उन्होंने जुबीन के लिए पान और सुपारी से विदा किया। यह पल भावुक करने वाला था। जनता की भावना इतनी व्यापक थी जैसे शोक की अचानक बाढ़ आ गई। कई घंटे हो गये असम को जुबिन दा विहीन हुए, पर जुबिन दा को भरोसा था– 'शो मास्ट गो ऑन,' कोई और आएंगे, फिर से साहस जगाने और प्यार बरसाने के लिए। सलाम गोल्डी दा। **(सप्रेस)**

(लेखक केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के सचिव हैं)

(आवरण पृष्ठ 2 का शेषांश)

यह सुनकर
भेड़ों की ख़ुशी का ठिकाना न रहा
लेकिन यह ख़ुशी
धीरे–धीरे मायूसी में बदलने लगी
फन्ने खां आता
और सब्ज़ बाग़ का सपना दोहराकर
चला जाता
हक़ीक़त में कुछ होता नहीं था

फ़न्ने खां समझ गया
इस तरह ज़्यादा दिन नहीं चलेगा
भेड़ों का भरोसा जीतने के लिए
कुछ करना होगा

इस बार आते ही उसने एलान कर दिया
सब्ज़ बाग़ का निर्माण शुरू हो गया है
भेड़ें ख़ुशी के मारे उछलने लगीं
और फ़न्ने खां हाथ हिलाता चला गया

इसके बाद जब फ़न्ने खां आया
तो भेड़ों ने सोचा
कि सब्ज़ बाग़ बन गया होगा
अब हमलोग यहाँ से वहाँ के लिए
कूच करेंगे

लेकिन फ़न्ने खां ने बताया
हमारे विरोधी रोज़ अड़ंगे डाल रहे हैं
उन्हें ठिकाने लगाये बग़ैर
हमारा सपना पूरा नहीं होगा

तब से फ़न्ने खां
अनगिनत विरोधियों से निपटने में
जुटा है लगातार
और भेड़ें कर रही हैं इन्तज़ार
कब होगा
सब्ज़ बाग़ का सपना साकार।

फन्ने खां : सात

फ़न्ने खां को
एक से बढ़कर एक
ग़ज़ब के खय़ाल आते थे
और जब भी ऐसा होता
वह पुलाव पकाने बैठ जाता

पूरे घर में ही नहीं
घर के बाहर भी
पुलाव की ख़ुश्बू फैलने लगती
फ़न्ने खां के पालतू कुत्ते कूँ कूँ करते
बरामदे में घूमते रहते
गली से गुज़र रहे राहगीर की भी
भूख भड़क जाती
कुछ ही पलों में
पूरे मुहल्ले को खब़र हो जाती
कि फ़न्ने खां के यहाँ पुलाव पक रहा है
लगता है फिर कोई
ग़ज़ब का खय़ाल आया है
पर यह हर किसी के अनुमान से परे था
कि फ़न्ने खां के दिमाग़ में क्या चल रहा है

पुलाव पक जाता
तो फ़न्ने खां नौकर के जरिये
थोड़ा–थोड़ा पुलाव
पड़ोसियों के यहाँ भी भिजवा देता

जब उनमें से कोई मिलता
तो फ़न्ने खां पूछता –
क्या भई पुलाव कैसा लगा?
जवाब मिलता प्लेट में पुलाव तो था नहीं
सिर्फ़ प्लेट थी!
फ़न्ने खां मुस्कराते हुए कहता –
ख़ुश्बू तो थी न!

एक दिन फ़न्ने खां को
एक और ग़ज़ब का खय़ाल आया
कि पुलाव पकाने के बजाय
क्यों न पुलाव का पेड़ लगा दिया जाए
ताकि उसकी ख़ुश्बू हर वक़्त फैलती रहे

फिर उसने वैसा ही किया
पुलाव का पेड़ लगा दिया
और उसकी फोटो भी
सोशल मीडिया पर ज़ारी कर दी।

फ़न्ने ख़ां : आठ

फ़न्ने ख़ां अक्सर
एक ख़ास तरह के ख़्वाब में पहुँच जाता
जहाँ वह सारी दुनिया को
इल्म बाँटना शुरू कर देता

कभी वह वैज्ञानिकों को
क्लाइमेट चेंज के बारे में बता रहा होता
तो कभी इतिहासकारों को
तक्षशिला के बारे में
कभी वह चिकित्सकों की सभा में
बता रहा होता
कि प्लास्टिक सर्जरी का विकास कैसे हुआ
तो कभी शिक्षाविदों को समझा रहा होता
शिक्षण की विधियाँ
और कभी परीक्षार्थियों को परीक्षा के गुर

लेकिन बच्चे
बड़ों की तरह
अपनी जिज्ञासा पर काबू नहीं रख पाते
एक बच्चा पूछ बैठा
सर, आपने कहाँ तक पढ़ाई की है?

यह सुनते ही फ़न्ने ख़ां
वहाँ से फनफनाता हुआ निकल गया
फिर नज़र नहीं आया

एक बच्चे के प्रश्न ने
उसे इतना डरा दिया
कि कुछ दिन उसे कोई ख़्वाब नहीं आया

लेकिन इल्म बाँटने की इच्छा
उसे फिर परेशान करने लगी
और वह फिर ख़्वाब में पहुँच गया
पर इस बार
श्रोताओं को सम्बोधित करने से पहले
उसने बैनर टाँग दिया –
सवाल पूछना मना है।

फ़न्ने ख़ां : नौ

फ़न्ने ख़ां जब भी नया कुर्ता सिलवाता
नाप देने के बाद दर्जी से कहता
कुर्ते का सीना ज़रा बढ़ाकर सिलना
दर्जी हैरान रह जाता
नाप का खयाल रखने के बजाय
फ़न्ने ख़ां ऐसा क्यों चाहता है
मगर उसे मानना ही पड़ता
ग्राहक का इसरार

नया कुर्ता पहने
जब भी फ़न्ने ख़ां दिख जाता
दर्जी अचरज में पड़ जाता
कुर्ता बिल्कुल फिट आया है
इतने चौड़े सीने का कुर्ता मगर तनिक भी
कहीं झोल नहीं

फ़न्ने ख़ां जहाँ भी नमूदार होता
चाहे किसी सड़क पर या बाज़ार में
या दोस्तों की महफ़िल में
या किसी मजलिस या जलसे में
लोगों का ध्यान ज़रूर
उसके बेहद चौड़े सीने पर जाता
बहुत से लोग बस इसीलिए
उसके मुरीद हो गये थे
कि फ़न्ने ख़ां के मुक़ाबले का सीना
किसी और का नहीं था

लेकिन एक रोज़ हुआ यह कि
फ़न्ने ख़ां के एक जिगरी दोस्त ने
जाने क्या सोचकर
या जाने किस झोंक में आकर सरेआम
फ़न्ने ख़ां को ख़ूब ज़ोर से
अपने सीने से लगा लिया

फ़न्ने ख़ां के गुब्बारे फूट गये
और इसी के साथ
उसका सीना भी पिचक गया
और उसी दिन से वह दोस्त भी
दोस्त न रहा।

फ़न्ने ख़ां : दस

फ़न्ने ख़ां के सीने की तरह
फ़न्ने ख़ां का झोला भी
बन गया था फ़न्ने ख़ां का एक प्रतीक

फ़न्ने ख़ां के झोले में क्या है इसे लेकर
शुरू शुरू में लोगों के अलग अलग कयास थे
कुछ लोग सोचते झोले में किताबें होंगी
इसके अलावा डायरी नोटबुक कलम वगैरह
कुछ लोग सोचते खाने-पीने की चीज़ें होंगी
पर सारी ग़लतफ़हमी दूर हो गयी
जब फ़न्ने ख़ां ने अपने झोले से निकालकर
पुड़िया बाँटना शुरू किया
हर मर्ज़ की एक दवा
फ़न्ने ख़ां की पुड़िया
बच्चे बुजुर्ग युवा नर नारी सबके लिए मुफीद
और मुफ़्त

आदमी कितना भी कमज़ोर हो
फ़न्ने ख़ां की पुड़िया का सेवन करते ही
अपने को बेहद ताक़तवर महसूस करता
उसे ज़ोर आजमाइश की बारहा तलब लगती
हर चीज़ पर शंका
और हर किसी से आशंका
उसके दिमाग़ में घर कर जाती
फिर वह जासूस जैसा सलूक करने लगता
जिसके साथ उठता-बैठता
और सुख-दुख साझा करता रहा
उसे पराया समझने लगता
पुश्तों से पड़ोसी परिवार
उसे घुसपैठिया नज़र आता

पुड़िया का सबसे बड़ा कमाल यह था
कि आदमी कितने भी अभाव कितनी भी तक़लीफ
कितनी भी पीड़ा से ग्रसित हो
सब कुछ भूल जाता
उसे न वर्तमान की कोई समस्या तंग करती
न भविष्य की चिन्ता
वह अतीत को चमकाने और इतिहास को
सीधा सरल समतल बनाने में जुट जाता

उसे दूर दिग् दिगन्त से आती
डंका बजने की आवाज़ सुनाई देती
और वह हर्षविभोर हो नाचने लगता

हवाई चप्पल पहने
राशन की लाइन में ख़डे आदमी को लगता
वह हवाई जहाज में बैठने जा रहे
मुसाफ़िरों की क़तार में ख़डा है

इस तरह के चमत्कारी असर के कारण
पुड़िया की लोकप्रियता बढ़ती गयी
और प्रचारकों की एक फ़ौज ख़डी हो गयी
जो यह चिल्लाते घूमते रहते
हर मर्ज़ की एक दवा
हाँ हर मर्ज़ की एक दवा
फ़न्ने ख़ां की पुड़िया ले लो
फ़न्ने ख़ां की पुड़िया

जानकारों का कहना था
यह पुड़िया और कुछ नहीं
एक अजीब तरह का नशीला पदार्थ है
इसमें क्या क्या मिलाया गया है
इसकी जाँच होनी चाहिए
इसके घातक परिणामों के बारे में
लोगों को आगाह किया जाना चाहिए
कुछ लोग इसके वितरण पर
रोक लगाने की माँग भी करते

लेकिन कितने भी भयावह परिणाम हों
फ़न्ने ख़ां को क्या!
वह तो फकीर आदमी है
झोला उठाकर चल देगा!

<u>आखिरी पन्ना</u>

कांग्रेस का स्थान और काम

गांधीजी

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस देश की सब से पुरानी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्था है। उसने कई अहिंसक लड़ाइयों के बाद आज़ादी हासिल की है। उसे मरने नहीं दिया जा सकता। उसका खात्मा सिर्फ तभी हो सकता है जब राष्ट्र का खात्मा हो। एक जीवित संस्था या तो जीवित प्राणी की तरह लगातार बढ़ती रहती है या मर जाती है। काँग्रेस ने सियासी आज़ादी तो हासिल कर ली है, मगर उसे अभी आर्थिक आज़ादी, सामाजिक आज़ादी और नैतिक आज़ादी हासिल करनी है। ये आज़ादियाँ चूँकि रचनात्मक है, कम उत्तेजक है और भड़कीली नहीं है, इसलिए इन्हें हासिल करना सियासी आज़ादी से ज्यादा मुश्किल है। जीवन के सारे पहलुओं को अपनेमें समा लेनेवाला रचनात्मक काम करोड़ों जनता के सारे अंगों की शक्ति को जगाता है।

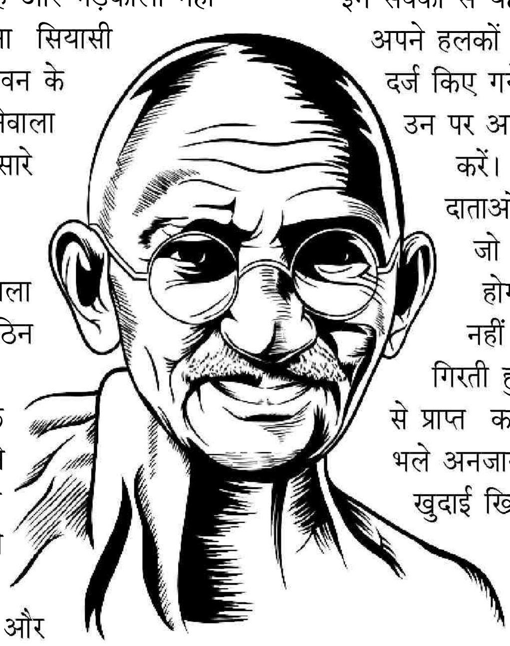

काँग्रेस को उसकी आज़ादी का प्रारम्भिक और ज़रुरी हिस्सा मिला गया है। लेकिन उसकी सब से कठिन मंजिल आना अभी बाकी है। लोकशाही व्यवस्था कायम करने के अपने मुश्किल मकसद तक पहुँचने में उसने अनिवार्य रूप से दलबन्दी करनेवाले गन्दे पानी के गड़हों-जैसे मंडल खड़े किए हैं, जिन रचनात्मक कार्यक्रम से घूसणखोरी और बेईमानी फैली है और ऐसी संस्थाएँ पैदा हुई हैं, जो नाम की ही लोकप्रिय और प्रजातांत्रिक हैं। इन सब बुराइयों के जंगल से बाहर कैसे निकला जाए?

काँग्रेस को सब से पहले अपने मेम्बरों के उस खास रजिस्टर को अलग हटा देना चाहिए, जिसमें मेम्बरों की तादाद कभी भी एक करोड़ से आगे नहीं बढ़ी, और तब भी जिन्हें आसानी से पहचाना नहीं जा सकता था। उसके पास ऐसे करोड़ों लोगों का एक अज्ञात रजिस्टर था, जो कभी उसके काम में नहीं आये। अब काँग्रेस का रजिस्टर इतना बड़ा होना चाहिए कि देश के मतदाताओं की सूची में जितने स्त्री-पुरुषों के नाम हैं वे सब उसमें आ जाएँ। काँग्रेस का काम यह देखना होना चाहिए कि कोई बनावटी नाम उसमें शामिल न हो जाए और कोई जायज नाम छूट न जाए। उसके अपने रजिस्टर में उन देश सेवकों के नाम रहेंगे, जो समय-समय पर अपने को सौंपा हुआ काम करते रहेंगे।

देश के दुर्भाग्य से ऐसे कार्यकर्ता फिलहाल खास तौर पर शहरवालों में से ही लिए जावेंगे, जिनमें से ज्यादातर को देहातों के लिए और देहातों में काम करने की ज़रूरत होगी। मगर इस श्रेणी में अधिकाधिक संख्या में देहाती लोग ही भरती किए जाने चाहिए।

इन सेवकों से यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे अपने हलकों में कानून के मुताबिक रजिस्टर में दर्ज किए गये मतदाताओं के बीच काम करके उन पर अपना प्रभाव डालें और उनकी सेवा करें। कई व्यक्ति और पार्टियाँ इन मत-दाताओं को अपने पक्ष में करना चाहेंगे। जो सब से अच्छे होंगे उन्हीं की जीत होगी। इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इससे काँग्रेस देश में तेजी से गिरती हुई अपनी अनुपम स्थिति को फिर से प्राप्त कर सकेगी। अभी कल तक काँग्रेस भले अनजान में ही देश की सेविका थी। वह खुदाई खिदमतगार थी- भगवान की सेविका थी। अब वह अपने आप से और दुनियाँ से कहे कि वह सिर्फ भगवान की सेविका है-न इससे ज्यादा है, न कम। अगर वह सत्ता हड़पने के व्यर्थ के झगड़ों में पड़ती है, तो एक दिन अचानक देखेगी कि उसकी हस्ती मिट गई है। भगवान को धन्यवाद है कि अब वह जन सेवा के क्षेत्र की एकमात्र स्वामिनी नहीं रही है।

मैंने सिर्फ दूर का दृश्य आप के सामने रखा है। अगर मुझे समय मिला और मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा, तो मैं इन कालमों में यह चर्चा करने की उम्मीद रखता हूँ कि अपने मालिकों-सारे बालिग स्त्री-पुरुषों-की नजरों में अपने को ऊँचा उठाने के लिए देश सेवक क्या कर सकते हैं। **नई दिल्ली, 27-1-1948**

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अतुल कुमार प्रसाद सिंह द्वारा 14, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091 से प्रकाशित और दीप कलर स्कैन (प्रा.) लिमिटेड, एफ-5, गली नं. 4 ए, फ्रेंड्स कॉलोनी इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली-95 से मुद्रित। संपादक : **अफ़लातून**